दंसणमूलो धम्मो

# आत्मधर्म

श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र) का मुखपत्र

**लाभ का धन्धा**

तेरी चैतन्यवस्तु ध्रुव-अविनाशी है; इसलिये
उस ध्रुवस्वभाव की ओर लक्ष (दृष्टि) दे तो
शुद्धता प्रगट हो जाये, हानि टल जाये, और अटल
लाभ का धंधा हो जाये। —पूज्य स्वामीजी

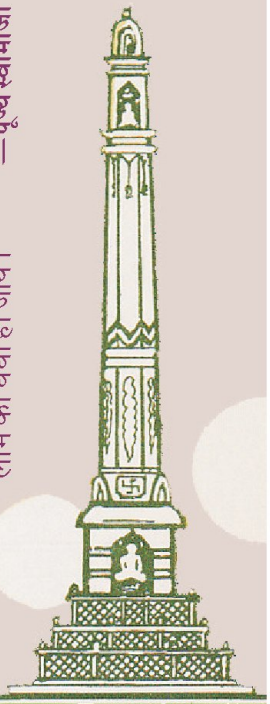

सम्पादक : डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल
कार्यालय : टोडरमल स्मारक भवन, ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४

# आत्मधर्म [ ४०३ ]

[ हिन्दी, गुजराती, मराठी तथा कन्नड़ — इन चार भाषाओं में प्रकाशित
जैन समाज का सर्वाधिक बिक्रीवाला आध्यात्मिक मासिक ]

संपादक :
**डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल**
प्रबंध संपादक :
**अखिल बंसल**
कार्यालय :
**श्री टोडरमल स्मारक भवन**
ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४
प्रकाशक :
**श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट**
सोनगढ़ (भावनगर-गुजरात)
शुल्क :
आजीवन : १०१ रुपये
वार्षिक : ६ रुपये
एक प्रति : ५० पैसे
मुद्रक :
सोहनलाल जैन
जयपुर प्रिण्टर्स, जयपुर

**क्या**

१ अपनी सुधि भूला आप
२ शीतकालीन परीक्षा कार्यक्रम
३ संपादकीय : क्षमावाणी
४ हेय और उपादेय
[नियमसार प्रवचन]
५ सततमनुभवामोऽनंतचैतन्यचिह्नं
[समयसार प्रवचन]
६ द्रव्यसंग्रह प्रवचन
७ ज्ञान-गोष्ठी
८ समाचार दर्शन
९ अभिमत
१० प्रबंध संपादक की कलम से

**न जलना - न गलना**

संत कहते हैं कि हम अपने स्व-घर में आ गये—अब अनुकूलता की बरफ में हमें गल जाना नहीं है तथा प्रतिकूलता की अग्नि में जलना भी नहीं है। हमारा ज्ञानविलास प्रगट हुआ है—उसमें हमने प्रवेश किया सो किया; अब हमें उससे बाहर निकालने में कोई समर्थ नहीं है।

— पूज्य स्वामीजी

# आ त्म ध र्म

शाश्वत सुख का, आत्म शान्ति का, प्रगट करे जो मर्म।
समयसार का सार, सभी को प्रिय, यह आतम धर्म॥

वर्ष : ३४ [४०३] अंक : ७


अपनी सुधि भूल आप, आप दुख उपायो।
ज्यों शुक नभ चाल विसरि, नलिनी लटकायो।टेक॥
चेतन अविरुद्ध शुद्ध, दरश-बोधमय विशुद्ध।
तजि जड़ फरसरूप, पुद्गल अपनायो।
अपनी सुधि भूल आप० ॥१॥
इंद्रिय सुख-दुख में नित्त, पाग राग-रुख में चित्त।
दायक भव विपति वृंद, बंध को बढ़ायौ।
अपनी सुधि भूल आप० ॥२॥
चाह दाह दाहै, त्यागौ न ताह चाहै।
समता सुधा न गाहै, जिन निकट जो बतायौ॥
अपनी सुधि भूल आप० ॥३॥
मानुष भव सुकुल पाय, जिनवर शासन लहाय।
'दौल' निजस्वभाव भज, अनादि जो न ध्यायौ॥
अपनी सुधि भूल आप० ॥४॥

# श्री वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड

श्री टोडरमल स्मारक भवन, ए-४, बापूनगर, जयपुर-३०२००४ ( राजस्थान )

## शीतकालीन परीक्षा-कार्यक्रम सन् १९७९

| दिन व दिनांक | नाम ग्रंथ |
|---|---|
| सोमवार<br>५ फरवरी, १९७९ | १. बालबोध पाठमाला भाग १ ( बा० प्रथम खंड ) मौखिक<br>२. जैन बालपोथी भाग १ ( मौखिक )<br>३. वीतराग-विज्ञान पाठमाला भाग १ ( प्र० प्रथम खंड )<br>४. तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग १<br>५. छहढाला ( पूर्ण )<br>६. तत्त्वार्थसूत्र ( मोक्षशास्त्र ) पूर्वार्द्ध<br>७. मोक्षमार्गप्रकाशक ( पूर्वार्द्ध )<br>८. जैन सिद्धांत प्रवेशिका ( बरैयाजी )<br>९. विशारद द्वितीय खंड ( प्रथम वर्ष ) |
| मंगलवार,<br>६ फरवरी, १९७९ | १. बालबोध पाठमाला भाग २ ( बा० द्वितीय खंड ) मौखिक<br>२. जैन बालपोथी भाग २ ( मौखिक )<br>३. वीतराग-विज्ञान पाठमाला भाग २ ( प्र. द्वितीय खंड )<br>४. तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग २<br>५. द्रव्यसंग्रह ( पूर्ण )<br>६. तत्त्वार्थसूत्र ( मोक्षशास्त्र ) उत्तरार्द्ध<br>७. लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका ( सोनगढ़ )<br>८. मोक्षमार्गप्रकाशक ( उत्तरार्द्ध )<br>९. विशारद प्रथम खंड ( प्रथम वर्ष )<br>१०. विशारद द्वितीय खंड ( द्वितीय वर्ष ) |
| बुधवार<br>७ फरवरी, १९७९ | १. बालबोध पाठमाला भाग ३ ( बा० तृतीय खंड ) मौखिक<br>२. वीतराग-विज्ञान पाठमाला भाग ३ ( प्र० तृतीय खंड )<br>३. रत्नकरण्ड श्रावकाचार ( पूर्ण )<br>४. पुरुषार्थसिद्ध्युपाय ( पूर्ण )<br>५. विशारद प्रथम खंड ( द्वितीय वर्ष ) |

नोट – ( १ ) सुविधानुसार परीक्षा का समय सुबह ९ बजे से ५ बजे तक के बीच में रखा जा सकता है।

( २ ) जहाँ एक से अधिक केन्द्र हों, वे आपस में मिलकर समय निश्चित करें।

( ३ ) यदि किन्हीं विषयों के छात्र आपस में टकराते हों तो परीक्षा सुविधानुसार दिन में दो बार ली जा सकती है।

# सम्पादकीय

## क्षमावाणी | एक परिशीलन

(गतांक से आगे)

दशलक्षण महापर्व के समान क्षमावाणी उत्सव भी वर्ष में तीन बार मनाया जाना चाहिये; पर जब दशलक्षणपर्व भी तीन बार नहीं मनाया जाता है तो फिर इसे कौन मनावे? अस्तु जो भी हो, पर वर्ष में एक बार तो हम इसे बड़े उत्साह से मनाते ही हैं। इस कारण भी इसका महत्त्व और अधिक बढ़ जाता है, क्योंकि मनोमालिन्य और बैरभाव धोने-मिटाने का अवसर एक बार ही प्राप्त होता है।

वर्ष में तीन बार क्षमावाणी आने का भी कारण है। और वह यह कि अप्रत्याख्यान कषाय छह माह से अधिक नहीं रहती। यदि अधिक रहे तो समझना चाहिये कि वह अनंतानुबंधी है। अनंतानुबंधी कषाय अनंत संसार का कारण है। अतः यदि क्षमावाणी छह माह के भीतर ही हो जावे और उसके निमित्त से हम छह माह के भीतर ही क्रोधमानादि कषायभावों को धो डालें तो बहुत अच्छा रहे।

बैरभाव तो एक दिन भी रखने की वस्तु नहीं है। प्रथम तो बैरभाव धारण ही नहीं करना चाहिये। यदि कदाचित् हो भी जावे तो उसे तत्काल मिटा देना चाहिये। इसके बाद भी यदि रह जाये तो फिर क्षमावाणी के दिन तो मन साफ हो ही जाना चाहिये।

इसमें एक बात और भी विचारणीय है। वह यह कि इसे हमने मनुष्यों तक ही सीमित कर रखा है, जबकि आचार्यों ने इसे जीवमात्र तक विस्तार दिया है।

वे यह नहीं लिखते:—

'खामेमि सव्व जैनी, सव्वे जैनी खमन्तु मे।'

या

'खामेमि सव्व मनुजा, सव्वे मनुजा खमन्तु मे।'

बल्कि लिखते हैं:—

'खामेमि सव्व जीवा, सव्वे जीवा खमन्तु मे।'

वे सब जैनियों या सर्व मनुष्यों मात्र से क्षमा माँगने या क्षमा करने की बात न करके सब जीवों को क्षमा करने और सब जीवों से क्षमा माँगने की बात करते हैं। इसीप्रकार वे मात्र जैनियों या मनुष्यों से मित्रता नहीं चाहते, किंतु प्राणीमात्र से मित्रता की कामना करते हैं। उनका दृष्टिकोण संकुचित नहीं, विशाल है।

यहाँ एक प्रश्न संभव है कि जब कोई जीव हमसे क्षमा माँगे ही नहीं, तो हम उसे कैसे क्षमा करें? तथा हम उससे क्या क्षमा माँगे, जो हमारी बात समझ ही नहीं सकता है। जो हमारी बात समझ ही नहीं सकता, वह हमें क्या क्षमा करेगा, कैसे क्षमा करेगा?—इसप्रकार एकेन्द्रियादि जीवों से क्षमा माँगना और उन्हें क्षमा करना कैसे संभव है?

क्षमायाचना या क्षमा करना दो प्राणियों की सम्मिलित (Combined) क्रिया नहीं है, यह एकदम व्यक्तिगत चीज़ है, स्वाधीन (Independent) क्रिया है। क्षमावाणी एक धार्मिक परिणति है, आध्यात्मिक क्रिया है। उसमें पर के सहयोग एवं स्वीकृति की आवश्यकता नहीं होती। यदि हम क्षमाभाव धारण करना चाहते हैं, तो उसके लिये यह आवश्यक नहीं कि जब कोई हमसे क्षमायाचना करे, तब ही हम क्षमा कर सकें अर्थात् क्षमा धारण कर सकें। अपराधी द्वारा क्षमायाचना नहीं किये जाने पर भी उसे क्षमा किया जा सकता है। यदि ऐसा नहीं होता तो फिर क्षमा धारण करना भी पराधीन हो जाता। यदि किसी ने हमसे क्षमायाचना नहीं की, तो उसने स्वयं की मानकषाय का त्याग नहीं किया और यदि हमने उसके द्वारा क्षमायाचना किये बिना ही क्षमा कर दिया तो हमने अपने क्रोधभाव का त्याग कर, उसका नहीं, अपना ही भला किया है।

इसीप्रकार हमारे द्वारा क्षमायाचना करने पर भी यदि कोई क्षमा नहीं करता है, तो क्रोध का त्याग नहीं करने से उसका ही बुरा होगा। हमने तो क्षमायाचना द्वारा मान का त्याग कर, अपने में मार्दवधर्म प्रकट कर ही लिया। उसके द्वारा क्षमा नहीं करने से, क्षमा माँगने से होनेवाले लाभ से हम वंचित नहीं रह सकते।

यही कारण है कि आचार्यों ने अन्य जीवों द्वारा क्षमायाचना की प्रतीक्षा किये बिना ही सब जीवों को अपनी ओर से क्षमा करके तथा 'कोई क्षमा करेगा या नहीं'—इस विकल्प के बिना ही

सबसे क्षमायाचना करके अपने अन्त:स्थल में उत्तमक्षमामार्दवादि धर्मों को धारण कर लिया।

कोई जीव हमसे क्षमा माँगे, चाहे नहीं; हमें क्षमा करे, चाहे नहीं; हम तो अपनी ओर से सबको क्षमा करते हैं और सबसे क्षमा माँगते हैं—इसप्रकार हम तो अब किसी के शत्रु नहीं रहे और न हमारी दृष्टि में कोई हमारा शत्रु रहा है। जगत हमें शत्रु मानो तो मानो, जानो तो जानो; हमें इससे क्या ? और हमारा दूसरे की मान्यता पर अधिक भी क्या है ?

हम तो अपनी मान्यता सुधारकर अपने में जाते हैं, जगत की जगत जाने—ऐसी वीतराग परिणति का नाम ही सच्चे अर्थों में क्षमावाणी है।

क्षमावाणी का सही स्वरूप नहीं समझ पाने के कारण उसके प्रस्तुतीकरण में भी अनेक विकृतियाँ उत्पन्न हो गयी हैं।

कुछ दिन पूर्व एक चित्र-प्रतियोगिता हुई थी, जिसमें क्षमावाणी को चित्र के माध्यम से प्रस्तुत करना था। सर्वोत्तम चित्र के लिये प्रथम पुरस्कार प्राप्त चित्र का जब प्रदर्शन किया गया, तब चित्रकार के साथ-साथ निर्णायकों की समझ पर भी तरस आये बिना न रहा।

'क्षमा वीरस्य भूषणम्' के प्रतीकरूप में दिखाये गये चित्र में एक पौराणिक महापुरुष द्वारा एक अपराधी का वध चित्रित था। उसका जो स्पष्टीकरण किया जा रहा था, उसका भाव कुछ इसप्रकार था—

'उक्त महापुरुष ने अपराधी के सौ अपराध क्षमा कर दिये, पर जब उसने एक सौ एकवाँ अपराध किया तो उसका सिर धड़ से अलग कर दिया।'

क्षमा के चित्रण में हत्या के प्रदर्शन का औचित्य सिद्ध करते हुए कहा जा रहा था:—

''यदि वे एक सौ एकवें अपराध के बाद भी उसको नहीं मारते तो फिर वे कायर समझे जाते। कायर की क्षमा कोई क्षमा नहीं है; क्योंकि क्षमा तो वीर का भूषण है।

सौ अपराधों को क्षमा करने से तो क्षमा सिद्ध हुई और मार डालने से वीरता। इसप्रकार यह 'क्षमा वीरस्य भूषणम्' का सर्वोत्कृष्ट प्रस्तुतीकरण है। यही कारण है कि इन्हें क्षमावाणी के अवसर पर तदर्थ प्रथम पुरस्कार दिया जा रहा है।''

क्षमा के साथ हिंसा की संगति ही नहीं, औचित्य सिद्ध करनेवालों से मुझे कुछ नहीं कहना। मैं तो मात्र यह कहना चाहता है कि इस पौराणिक आख्यान को क्षमा का रूपक

देनेवालों ने इस तथ्य की ओर ध्यान क्यों नहीं दिया कि उनकी क्षमा क्रोधादि कषायों के अभावरूप परिणति का परिणाम नहीं थी, वरन वे सौ अपराधों को क्षमा करने के लिये वचनबद्ध थे। उनकी वचनपालन की दृढ़ता और तत्संबंधी धैर्य तो प्रशंसनीय है, परंतु उसे उत्तमक्षमा का प्रतीक कैसे माना जा सकता है ?

दूसरी बात यह भी तो है कि क्या सच्चे क्षमाधारक की दृष्टि में कोई दूसरा भी अपराध हो सकता है ? जब उसने प्रथम अपराध क्षमा ही कर दिया, तब अगला अपराध दूसरा कैसे कहा जा सकता है ? यदि उसे दूसरा कहें तो पहले को वह भूला कहाँ ? जब प्रथम अपराध को क्षमा करने के बाद भी उसे भूल नहीं पाया तो फिर क्षमा ही क्या किया ?

वस्तुत: बात यह है कि हमारी परिणति तो क्रोधादिमय हो रही है और शास्त्रों में क्षमादि को अच्छा कहा है; अत: हम शास्त्रानुसार अच्छा बनने के लिये नहीं, वरन् अच्छा दिखने के लिये किसी क्रोध के रूप को ही क्षमा का नाम देकर क्षमाधारी बनना चाहते हैं।

क्षमाभाव का सर्वोत्कृष्ट चित्रण तो—

अरि-मित्र, महल-मसान, कंचन-काँच, निंदन-थुति करन।
अर्घावतारन-असिप्रहारन में सदा समता धरन॥

*—पंडित दौलतरामजी : छहढाला, छठवीं ढाल, छंद ६*

ऐसी स्थिति को प्राप्त समताधारी मुनिराज का चित्रण ही हो सकता है।

क्षमा कायरता नहीं, क्षमा धारण करना कायरों का काम भी नहीं; पर वीरता भी तो मात्र दूसरों को मारने का नाम नहीं है, दूसरों को जीतने का नाम भी नहीं है। अपनी वासनाओं को, कषायों को मारना; विकारों को जीतना ही वास्तविक वीरता है। युद्ध के मैदान में दूसरों को जीतनेवाले, मारनेवाले युद्धवीर हो सकते हैं; धर्मवीर नहीं। धर्मवीर ही क्षमाधारक हो सकता है; युद्धवीर नहीं।

वीरता के क्षेत्र को भी हमने संकुचित कर दिया है। अब वीरता हमें युद्धों में ही दिखायी देती है; शांति के क्षेत्र में भी वीरता प्रस्फुटित हो सकती है, यह हमारी समझ में ही नहीं आता। यही कारण है कि हमें 'क्षमा वीरस्य भूषणम्' को स्पष्ट करने के लिये हत्या दिखाना आवश्यक लगता है। हत्या दिखाये बिना वीरता का प्रस्तुतीकरण हमें संभव ही नहीं लगता।

जिस महापुरुष की लेखनी से यह महावाक्य प्रस्फुटित हुआ होगा, उसने सोचा भी न

होगा कि इसकी ऐसी भी व्याख्या की जावेगी। एक हत्या भी क्षमा का एवं वीरता का प्रतीक बन जावेगी।

एक बात यह भी ध्यान देनेयोग्य है कि जिन दशधर्मों की आराधना के बाद यह क्षमावाणी महापर्व आता है, उनकी चर्चा आचार्य उमास्वामी ने मुनिधर्म के प्रसंग में की है। दशधर्मों की आराधना का समग्र प्रतिफलन जिस क्षमावाणी में प्रस्फुटित होता है, वह क्षमावाणी कैसे होती होगी या होनी चाहिये—यह गंभीरता से विचारने की वस्तु है।

उसे मुनिराज पार्श्वनाथ की उस उपसर्गावस्था में भली-भाँति देखा जा सकता है, जिसमें कमठ का उपसर्ग और धरणेन्द्र द्वारा उपसर्ग निवारण किया जा रहा था और पार्श्वनाथ का दोनों के प्रति समभाव था। कहा भी है—

कमठे धरणेन्द्रे च स्वोचितं कर्म कुर्वति।
प्रभुस्तुल्य मनोवृत्तिः पार्श्वनाथः जिनोस्तु नः॥

अथवा उन मुनिराज के रूप में चित्रित की जा सकती है जो कि गले में मरा साँप डालनेवाले राजा श्रेणिक और उस उपसर्ग को दूर करनेवाली रानी चेलना को एक-सा आशीर्वाद देते हैं।

क्षमा के वास्तविक पौराणिकरूप तो ये हैं। क्या पार्श्वनाथ की वीरता में शंका की जा सकती है? नहीं, कदापि नहीं। इसीप्रकार वे मुनिराज भी क्या कम धीर-वीर थे जो उपसर्ग विजयी रहे। उपसर्गों में भी समता धारण किये रहना क्या कायरों का काम है?

'क्षमा कायरों का धर्म न कहा जाने लगे'—इस भाव से कहीं ऐसा न हो जावे कि हम उसे क्षमा ही न रहने दें।

जिस अपराध के लिये क्षमायाचना की गयी है, यदि वही अपराध हम निरंतर दुहराते रहे तो फिर उस क्षमायाचना से भी क्या लाभ? जिस अपराध के लिये हम क्षमायाचना कर रहे हैं, वह अपराध हमसे दुबारा न हो—इसके लिये यदि हम प्रतिज्ञाबद्ध न भी हो सकें तो संकल्पशील या कम से कम प्रयत्नशील तो हमें होना ही चाहिये। अन्यथा यह सब गजस्नानवत् निष्फल ही रहेगा।

क्षमायाचना और क्षमादान—ये दोनों ही वृत्तियाँ हृदय को हल्का करनेवाली उदात्त

वृत्तियाँ हैं, बैरभाव को मिटाकर परमशांति प्रदान करनेवाली हैं। प्रदान करनेवाली भी क्या, अंतर में प्रकट शांति का प्रतिफलन ही हैं।

सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है कि इस अज्ञानी आत्मा ने दूसरों से तो अनेकों बार क्षमायाचना की है, दूसरों को ही अनेकों बार क्षमाप्रदान भी की है; पर आजतक स्वयं से न तो क्षमायाचना ही की है और न स्वयं को क्षमा ही किया है। इसीलिए अनंत दु:खी भी है।

यहाँ आप कह सकते हैं कि स्वयं से क्या क्षमा माँगना और स्वयं को क्षमा करना भी क्या? पर भाईसाहब! आप यह क्यों भूल जाते हैं कि क्या आपने अपने प्रति कम अपराध किये हैं? कम अन्याय किये हैं? क्या अपने प्रति आपने कुछ कम क्रोध किया है? क्या आपने अपना कुछ कम अपमान किया है? इस तीनलोक के नाथ को विषयों का गुलाम और दर-दर का भिखारी नहीं बना दिया है? इसे अनंत दु:ख नहीं दिये हैं? क्या इसकी आपने आज तक सुध भी ली है?

ये हैं वे कुछ महान अपराध जो आपने अपनी आत्मा के प्रति किये हैं और जिनकी सजा आप स्वयं अनंतकाल से भोग रहे हैं। जब तक आप स्वयं अपने आत्मा की सुध-बुध नहीं लेंगे, उसे नहीं जानेंगे, नहीं पहिचानेंगे, उसमें ही नहीं जम जायेंगे, नहीं रम जायेंगे, तब तक इन अपराधों और अशांति से मुक्ति मिलनेवाली नहीं है।

निजात्मा के प्रति अरुचि ही उसके प्रति अनंत क्रोध है। जिसके प्रति हमारे हृदय में अरुचि होती है, उसकी उपेक्षा हमसे सहज ही होती रहती है। अपने आत्मा को क्षमा करने और उससे क्षमा माँगने का आशय मात्र यही है कि हम उसे जानें, पहिचानें और उसी में रम जायें। स्वयं को क्षमा करने और स्वयं से क्षमा माँगने के लिये वाणी की औपचारिकता की आवश्यकता नहीं है। निश्चयक्षमावाणी तो स्वयं के प्रति सजग हो जाना ही है, उसमें पर की अपेक्षा नहीं रहती। तथा आत्मा के आश्रय से क्रोधादिकषायों के उपशांत हो जाने से व्यवहारक्षमावाणी भी सहज ही प्रस्फुटित होती है।

अत: दूसरों से क्षमायाचना करने एवं क्षमा करने के साथ-साथ हम स्वयं को भी क्षमाकर स्वयं में ही जम जायें, रम जायें और अनंत शांति के सागर निजशुद्धात्मतत्त्व में निमग्न हो अनंतकाल तक अनंत आनंद में मग्न रहें—इस पवित्र भावना के साथ विराम लेता हूँ। ❋

# हेय और उपादेय

परमपूज्य दिगंबर आचार्य कुंदकुंद के प्रसिद्ध परमागम 'नियमसार' की ३८वीं गाथा एवं उसमें समागत कलश नं० ५४ पर हुए पूज्य कानजीस्वामी के प्रवचनों का सार यहाँ दिया जा रहा है। मूल गाथा इसप्रकार है:—

**जीवादिबहित्तच्चं हेयमुवादेयमप्पणो अप्पा।**
**कम्मोपाधिसमुब्भवगुणपज्जाएहिं वदिरित्तो॥३८॥**

जीवादि बाह्यतत्त्व हेय हैं; कर्मोपाधिजनित गुणपर्यायों से व्यतिरिक्त आत्मा आत्मा को उपादेय है।

यह हेय और उपादेय तत्त्व के स्वरूप का कथन है। छोड़नेयोग्य क्या है और ग्रहण करनेयोग्य क्या है? यह इस गाथा में बताया जाता है।

जीवादि सात तत्त्वों का रागसहित विचार परद्रव्य है, क्योंकि राग से सम्यग्दर्शन नहीं होता है, अतः सातों तत्त्व उपादेय नहीं हैं।

**जीवादि सात तत्त्वों का समूह परद्रव्य होने के कारण वास्तव में उपादेय नहीं है:—** आत्मा अनंत गुणों के पिंडस्वरूप वस्तु है, वह जीव है; कर्म अजीव है; पर्याय में राग-द्वेषादि के परिणाम होना आस्रव है; जीव का उस परिणाम में अटकना बन्ध है; आत्मा के लक्ष से निर्मलता होना संवर है; विशेष निर्मलता होना निर्जरा है; और परिपूर्ण निर्मलता वह मोक्ष है—इन सात तत्त्वों को यहाँ परद्रव्य कहा है।

**जीव-** "मैं ज्ञान, दर्शन, चारित्रादि अनंत गुणों का पिंड शुद्धजीव हूँ—कर्म, शरीरादि सब अजीव हैं, मैं उसरूप नहीं हूँ। संसारदशा में रागद्वेषादि के परिणाम होते हैं, किंतु वह मैं नहीं हूँ; मैं तो ज्ञानस्वरूप हूँ। संवर, निर्जरा और मोक्ष भी पर्याय है, इतना ही मैं नहीं हूँ; मैं तो अनादि-अनंत, एकरूप शुद्धकारणपरमात्मा हूँ। मेरे शुद्धकारणपरमात्मा के आधार से संवर, निर्जरा तथा केवलज्ञानादि की कार्यशुद्धदशा प्रकट होती है; ऐसा मैं शुद्ध चैतन्यस्वरूप हूँ, कारणपरमात्मा हूँ।" इसप्रकार मन के संबंध से रागसहित अपने जीव का विचार करना-उस

रागसहित जीवतत्त्व को हेय कहा है। चैतन्यस्वभाव का आश्रय न लेकर रागमिश्रित विचार से राग में रुकता है, अत: उस जीवतत्त्व को आदरणीय नहीं कहा।

सातों तत्त्व भिन्न-भिन्न हैं—ऐसा ज्ञान करने के लिये प्रथम राग की वृत्ति उठती है। किंतु सम्यग्दर्शन का विषय अथवा ध्येय राग नहीं है, राग से पुण्य बंध होता है, उससे सम्यग्दर्शन नहीं होता; इसलिये उस राग को हेय कहा है।

कारणशुद्धपरमात्मा जो मोक्ष का आधार है, स्वभावभाव है, उसके रागमिश्रित विचार को भी हेय कहा है, आदरणीय नहीं कहा; तो फिर दया, दान, व्रतादि के परिणाम तो हेय ही हैं, आदरणीय नहीं—यह बात इसमें आ जाती है।

अन्यमत वाले जीव का स्वरूप अन्यथा कहते हैं। सब मिलकर एकजीव कहते हैं। ऐसे जीव की तो बात ही नहीं है। यहाँ तो तीर्थंकरकथित जीव का स्वरूप यथार्थ माने उसकी बात करते हैं। दया-दानादि के परिणाम पुण्य हैं, हिंसादि के परिणाम पाप हैं—दोनों ही आस्रव हैं, उनमें अटकना बंध है। उनसे रहित त्रिकालीशुद्ध चैतन्यस्वभाव एकरूप परम पारिणामिक स्वभावभाव—उसका द्रव्य शुद्ध, गुण शुद्ध और उसकी वर्तमान पर्याय-कारणपर्याय भी शुद्ध, ऐसे परमपारिणामिक स्वभावभाव से वर्तते हुए शुद्ध जीवतत्त्व को जो मानता है—उसकी बात है। अजीवादि षट्तत्त्वों से भिन्न है, मोक्षपर्याय किसी निमित्त के कारण, पुण्य के कारण प्रकट नहीं होती; किंतु त्रिकाल शुद्ध परमपारिणामिकभाव के आधार से प्रकट होती है—ऐसा शुद्ध जीवतत्त्व है।

वह जीवतत्त्व असंख्यप्रदेशी है। उसमें ज्ञान, दर्शन, चारित्रादि अनंत गुण हैं और प्रत्येक गुण में प्रतिसमय पर्याय होती है। ऐसी अनंत पर्यायों सहित संपूर्ण आत्मा है। जिसमें से मोक्षरूपी कार्य प्रकट होता है, वह कारणशुद्धपरमात्मा है और वही शुद्ध जीवतत्त्व है। ऐसे शुद्ध जीवतत्त्व के रागमिश्रित विचार में अटकना वह पुण्यबंध का कारण है, धर्म का कारण नहीं। राग परद्रव्य है और उसमें कर्म का निमित्तरूप संबंध आता है, अत: रागयुक्त जीव को परद्रव्य कहकर हेय कहा है। दूसरे जीव की बात नहीं है। अपने जीव की रागसहित विचारणा करना वह उपादेय नहीं है; कारण कि राग के लक्ष से सम्यग्दर्शन होता नहीं है और ऐसी स्थिति में दया, दानादि के शुभभाव से अथवा शरीर की क्रिया से धर्म होता है—यह बात तो बहुत दूर रह गयी। सम्यग्दर्शन का विषय रागरहित शुद्धजीव है और उसी का अवलंबन करनेयोग्य है, चाहे

जैसा शुभराग हो परंतु है वह हेय ही है। केवली भगवान तथा गुरु इत्यादि परजीव हैं, उनसे संबंधित विचार की बात नहीं है, कारण कि वे जीव इस राग से अत्यंत भिन्न हैं। केवली और गुरु से जुदा मैं जीव हूँ, ऐसे स्व-जीव का विकल्प भी हेय है। इस अपेक्षा से जीवतत्त्व को यहाँ हेय कहा गया है।

**अजीवः—**शरीर, कर्म, शास्त्र इत्यादि अजीव हैं-जड़ हैं। वे द्रव्य अजीव हैं और उनके गुण तथा पर्यायें भी अजीव हैं। अजीव की पर्याय जीव करता है और जीव की पर्याय अजीव करता है—ऐसी मान्यता जिसकी है, उसके तो अभी व्यवहारश्रद्धा का भी ठिकाना नहीं है। कर्म, शरीर, वाणी, शास्त्र, रोटी, दाल, भात इत्यादि सभी अजीव पदार्थों की पर्याय अजीव के कारण होती है, जीव की इच्छा के कारण नहीं होती। आत्मा है—तो भाषा बोली जाती है अथवा शरीर चलता है—ऐसा जो मानता है, उसके तो अजीवतत्त्व की व्यवहारश्रद्धा भी सच्ची नहीं है। उसे रागसहित सात तत्त्व हेय हैं और अकेला जीव ही उपादेय है—ऐसी श्रद्धा कहाँ से होगी ? यहाँ तो अजीव से जीव को लाभ माने नहीं, वाणी से ज्ञान होता है ऐसा भी माने नहीं, अजीव के द्रव्य-गुण-पर्याय स्वतंत्र हैं; इसप्रकार जो अजीव को रागसहित स्वीकारता है अर्थात् रागपूर्वक विचार-विकल्प करता है, वह भी हेय है-उपादेय नहीं। कारण कि 'अजीव ऐसा है'—इसप्रकार विचार करने पर उस अजीव के लक्ष से राग की उत्पत्ति होती है, सम्यग्दर्शन नहीं होता; अतः रागसहित अजीवद्रव्य का विचार करना उपादेय नहीं।

**आस्रवः—**जीव की पर्याय में होनेवाले दया, दानादि के परिणाम पुण्य हैं; हिंसा, झूठ आदि के परिणाम पाप हैं-दोनों ही आस्रव हैं। अकेले पाप को आस्रव माने और पुण्य को आस्रव न माने, पुण्य से संवर माने; उसकी तो व्यवहारश्रद्धा भी सच्ची नहीं है। आस्रव से जीव को लाभ न माने, संवर-निर्जरा न माने, जिस भाव से तीर्थंकर नामकर्म बँधता है, वह भी आस्रव है और वह आस्रव विकार है, वह आत्मा का वास्तविक स्वरूप नहीं है, वह आस्रव जीव में से निकल जाता है, इसलिये परद्रव्य है; अतः हेय है-छोड़नेयोग्य है।

जो पुण्य से धर्म माने उसकी तो बात है ही नहीं, किंतु पुण्य से धर्म नहीं और वह बंध का ही कारण है-इसप्रकार राग से विचार करने का विकल्प भी परद्रव्य है, चैतन्यद्रव्य नहीं। चैतन्यद्रव्य तो अनादि-अनंत एकरूप रहता है। उसमें जितना विकार होता है, वह परद्रव्य कहकर ज्ञेय बताया गया है।

**बंध:**—जीव अपनी पर्याय में होनेवाले दया-दानादि में अटकता है, वह भावबंध है। उसका निमित्त पाकर कर्म का बंध पड़ता है, वह द्रव्यबंध है। यह दोनों ही परद्रव्य हैं, आत्मद्रव्य नहीं हैं; इसलिये यह दोनों ही-भावबंध और द्रव्यबंध हेय कहे गये हैं।

**संवर-निर्जरा:**—संवर-निर्जरा आत्मा के आश्रय से प्रगटी हुई निर्मल पर्यायें हैं। इन पर्यायों का आश्रय करने से निर्मल पर्याय प्रगट नहीं होती, बढ़ती नहीं। पर्याय का आश्रय लेने जाये तो राग की उत्पत्ति होती है। धर्म की पर्याय, धर्म की पर्याय के आधार से भी प्रगट नहीं होती; किंतु धर्मी ऐसा जो निजशुद्धद्रव्य उसके आधार से प्रगट होती है।

छठे गुणस्थान में मुनि के चारित्रदशा प्रगट हुई है। उस चारित्र की प्रगटी हुई पर्याय के आधार से चारित्र न तो प्रगट ही होता है और न वर्द्धमान ही। संवर-निर्जरारूप पर्याय के लक्ष से राग की ही उत्पत्ति होती है, अत: उसे परद्रव्य गिनकर हेय कहा है।

**मोक्ष :**—मोक्ष आत्मा के आश्रय से प्रगट होनेवाली पूर्णनिर्मलपर्याय है। साधक जीव को वर्तमान में वह प्रगट नहीं है। जो प्रगट नहीं है, उसका विचार करने जाये तो राग की उत्पत्ति होती है, अत: इस अपेक्षा से उसे परद्रव्य कहा है।

संवर-निर्जरा-मोक्ष वह पर्याय है, पर्याय है, वह अंश है; अंश अंशी में से आता है, किंतु अंश अंश में से नहीं आता। पर्याय का आश्रय लेने जाये तो विकल्प उठता है। अत: पर्याय की गणना परद्रव्य में करके उसे हेय कहा है।

इस भाँति सातों तत्त्वों का रागमिश्रित विचार करना आदरणीय नहीं है, हेय है। सिद्ध तथा केवली इस जीव के लिये परजीव हैं। 'मैं जीव हूँ'—ऐसा विकल्प भी आदरणीय नहीं है, सम्यग्दर्शन का ध्येय बनाने के लिये आदरणीय नहीं है। यह बात सर्वज्ञ के अलावा अन्यत्र नहीं है। जो जीव सच्चे देव, शास्त्र, गुरु को तथा सात तत्त्वों को व्यवहार से भी नहीं मानते उनकी तो बात ही यहाँ नहीं है। यहाँ तो सच्चे देव, निर्ग्रंथ गुरु और सर्वज्ञ की वाणी-परंपरा से रचे हुए शास्त्रों को व्यवहार से मानता है—वह जीव सात तत्त्वों का रागसहित विचार करे तो वह भी आदरणीय नहीं है, अपितु हेय है—छोड़ने योग्य है। धर्मी जीव के शुद्ध आत्मा के आश्रय से प्रगटी हुई वीतरागी पर्याय (शुद्धरत्नत्रय भी पर्याय है) के आश्रय से भी विकल्प की उत्पत्ति होती है—इसलिये उसकी भी परिगणना परद्रव्य में करके उपादेय नहीं है—ऐसा कहा है। शुद्ध आत्मा ही एक धर्म का कारण है, अत: उसी को उपादेय कहेंगे।

वैराग्यवंत तीक्ष्ण बुद्धिवाले निर्ग्रंथ मुनि को 'आत्मा' वास्तव में उपादेय है।

कैसे हैं वे मुनि ?''**सहजवैराग्यरूपी महल के शिखर के जो शिखामणि हैं, परद्रव्य से जो पराङ्मुख हैं, पाँच इंद्रियों के फैलाव से रहित देहमात्र जिनका परिग्रह है, जो परमजिनयोगीश्वर हैं, स्वद्रव्य में जिनकी तीक्ष्ण बुद्धि है-ऐसे आत्मा को 'आत्मा' वास्तव में उपादेय है।**''

प्रथम ही सात तत्त्व परद्रव्य होने से उपादेय नहीं हैं—ऐसा कहा था। अब आत्मा वास्तव में उपादेय है, ऐसा कहते हैं। शुद्धचैतन्यस्वभाव कारणपरमात्मा ही वास्तव में आत्मा है, उसकी व्याख्या आगे करेंगे। 'आत्मा उपादेय है' यह बात मुख्यत: मुनि को लक्ष में रख कर की गयी है, कारण कि कुंदकुंद भगवान तथा पद्मप्रभमलधारिदेव दोनों ही भावलिंगी समर्थ मुनि थे।

वे मुनि कैसे हैं ?

(१) **सहजवैराग्यरूपी महल के शिखर के शिखामणि हैं:**-आत्मा के भानसहित मुनि अपने स्वरूप की अंतररमणता में हजारों बार झूलते हैं, आनंदकंद में झूलते हुए अमृतरस का अनुभव लेते हैं। सहज-स्वाभाविक वैराग्यवाले हैं, हठपूर्वक वैराग्यवाले नहीं हैं अथवा मोहगर्भित वैराग्य नहीं है। परनिमित्त से, शुभभाव से तथा पंच महाव्रतादि के परिणाम से उदास हैं, शुद्धचैतन्यस्वभावी हैं।

अज्ञानी जीव कहते हैं कि ''स्त्री, पुत्रादि संसार के कारण हैं, अत: उनके प्रति तीव्रद्वेष करके हेयबुद्धि करना कि जिससे उन्हें सुख का कारण मानना छूट जाये और वैराग्य हो।'' ऐसा माननेवाला जीव अनंतानुबंधी के तीव्रद्वेषसहित मिथ्यादृष्टि है। मुनियों के परद्रव्य तो ज्ञेय हैं, वे किसी भी द्रव्य को लाभ-हानिकारक मानते नहीं हैं। सहजस्वभाव में लीनता बढ़ने पर स्वाभाविक वैराग्य वर्तता है तथा बाह्याभ्यंतर परिग्रहरहित निर्ग्रंथ दशा वर्तती है। ऐसे मुनि वैराग्यरूपी महल के शिखर के चूड़ामणि समान हैं अर्थात् उनके विशेष वैराग्यदशा वर्तती है।

(२) **परद्रव्य से पराङ्मुख हैं:**-'मैं आत्मा परिपूर्ण हूँ'—इसप्रकार जीव का रागसहित विकल्प एवं 'अजीव की क्रिया अजीव से होती है, मैं शुद्धकारणपरमात्मा हूँ, मेरे कारण अजीव में कुछ भी नहीं होता, मेरे कारण तो निर्मलपर्याय प्रकट होती है' ऐसे सातत्त्वों के भिन्न-भिन्न विकल्पोंरूपी परद्रव्य से मुनि उदास हैं। उन विकल्पों के प्रति उनकी सन्मुखता

नहीं है। ऐसे भावलिंगी मुनिराज विकल्पों से भी उदास हैं तो फिर बाह्य पदार्थों के प्रति अत्यंत उदास हैं ही। उनके वस्त्र का परिग्रह नहीं होता, जो वस्त्रसहित मुनिपना माने वह मिथ्यादृष्टि है। मुनि के तो बाह्याभ्यंतर निर्ग्रंथदशा ही वर्तती है—ऐसा त्रिकाल का अबाधित नियम है।

(३) **पंचेन्द्रियों के फैलावरहित देहमात्र परिग्रह है :-** अपनी भावेन्द्रियाँ परपदार्थों को विषय करके खंड-खंड नहीं होतीं, स्वभाव की तरफ ही मुख्यरूपेण झुकाव है। पर की ओर जाने पर ज्ञान संकोच पाता था, वह अब स्वभाव की ओर ढलकर विकास को प्राप्त होता है। जिनके देहमात्र परिग्रह है, मोरपीछी तथा कमंडल तो जब उनके ऊपर लक्ष जाता है, तब होते हैं, अत: उनकी गणना अपवादिक परिग्रह में की है। देह भी अपवादिक है किंतु आयुपर्यंत साथ में रहती है, छोड़ी जा सकती नहीं, इसलिये शरीर अकेले को परिग्रह में गिना गया है। मुनि को शरीर का राग विशेषत: छूट गया है, इसलिये शरीर को सर्दी-गर्मी से बचाने के लिये वस्त्र ग्रहण करूँ या छोडूँ—ऐसा विकल्प सहज ही नहीं उठता, अत: बाह्य नग्नदिगम्बरदशा वर्तती है।

(४) **जो परम जिनयोगीश्वर हैं :-** मुनि आत्मा के स्वभाव में उत्कृष्टरूप से लीनता करके स्वरूप-साधना कर रहे हैं। चतुर्थगुणस्थान में आत्मा का भान हुआ वह सम्यग्दृष्टि भी योगी है, परंतु अभी स्वरूप में विशेष लीनता नहीं है। मुनि तो आत्मस्वरूप में बार-बार लीन हैं, अत: उन्हें योगीश्वर कहा है। अन्यमत वाले अमुक प्रकार का ध्यान करने के कारण योगी कहे जाते हैं, वे वास्तव में योगी नहीं, अपितु योगाभासी हैं। इसीकारण यहाँ जिनयोगीश्वर कहा गया है। जिसको आत्मा का भान नहीं उसको योग होता नहीं। इस जगत में सब मिलकर एक जीव नहीं है, अनंत जीव हैं, और प्रत्येक जीव भिन्न-भिन्न है। प्रत्येक जीव में ज्ञान, दर्शन, चारित्र, अस्तित्वादि अनंत गुण हैं; उनका अभान होने से संसार में एकसमय की विकारदशा पर्याय में अपने कारण से होती है—पर के कारण नहीं। प्रतिसमय ऐसी अनंत पर्यायें होती हैं, उनमें कर्म निमित्त है। कर्मरूप से परिणमन होने योग्य स्कंध हैं—उनका द्रव्य, गुण, पर्याय समझना चाहिये। इसप्रकार अनेकरूप से वस्तु का स्वरूप सर्वज्ञ के अतिरिक्त अन्यत्र है ही नहीं। व्यवहार से भी वस्तु का स्वरूप माने बिना नाम से भले ही योग कहा जाये, किंतु है वह योगाभास ही। यहाँ तो आत्मा के भानसहित अपने में अंतर पर्याय को उत्कृष्टपने जोड़ता है, वह योगीश्वर है।

(५) **स्वद्रव्य में जिनकी तीक्ष्ण बुद्धि है :-** 'मैं शुद्ध जीवतत्त्व हूँ, कर्म और शरीर अजीव हैं'—इत्यादि सात तत्त्वों का विकल्प वह परद्रव्य है। राग के ओर की वृत्ति टूट गयी है, अजीव (कर्म) निमित्त का अथवा पुण्य-पाप का अवलंबन नहीं है, स्वद्रव्य का अवलंबन वर्त रहा है। मात्र स्वद्रव्य में ज्ञान को उग्र करके अंतर में गुम हो गया है और छठे गुणस्थान में कभी-कभी भिक्षा का अथवा उपदेश का विकल्प उठे तथापि उस विकल्प से अत्यंत पराङ्मुख हैं। विकल्परूपी परद्रव्य से अभावरूप होकर अपने ज्ञानस्वभावरूप में समय-समय परिणमन कर रहे हैं। छठे-सातवें गुणस्थान में हजारों बार झूलते हैं। छठे में विकल्प उठता है किंतु उससे अत्यंत पराङ्मुख हैं, यदा-कदा सात तत्त्वों का विकल्प होता है तथापि उससे अत्यंत पराङ्मुख हैं। त्रिकाली ज्ञानस्वभाव के अस्तिरूप परिणमन तथा सात तत्त्वों के विकल्प के अभावरूप परिणमन हो रहा है। परद्रव्यों से पराङ्मुख कहकर नास्ति से कथन किया है तथा स्वभाव में तीक्ष्णबुद्धि है ऐसा कहकर अस्ति से कथन किया है। अस्ति-नास्ति दोनों एकसमय में हैं।

तत्त्वार्थसूत्र में सातत्त्वों की श्रद्धा को सम्यग्दर्शन कहा और यहाँ सात तत्त्वों को हेय कहा—ऐसा क्यों? श्री उमास्वामी महाराज ने तत्त्वार्थसूत्र में तथा पंडित टोडरमलजी ने मोक्षमार्गप्रकाशक में सात तत्त्व अथवा नवतत्त्व की श्रद्धा को सम्यग्दर्शन कहा है; वह व्यवहारसम्यग्दर्शन की बात नहीं है, अपितु निश्चयसम्यग्दर्शन की ही व्याख्या है। यहाँ कोई प्रश्न कर सकता है कि यहाँ इस शास्त्र में तो सात तत्त्वों को परद्रव्य कहकर हेय कहा है तो फिर इन दोनों कथनों में सुमेल किसप्रकार है?

उसका समाधान :- यहाँ नियमसार में सात तत्त्वों को परद्रव्य कहकर हेय कहा है, वह रागयुक्त श्रद्धा को कहा है; कारण कि उसमें विकल्प उठता है और विकल्प से सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति होती नहीं, इसलिये हेय कहा; जबकि तत्त्वार्थसूत्र में रागरहित नवतत्त्व की श्रद्धा की बात है। धर्मी जीव अपने त्रिकाली शुद्धस्वभाव की श्रद्धा-ज्ञान करके स्व-अस्तिरूप से परिणमन करता है, तब सात तत्त्वों के विकल्प का परिणमन नास्तिरूप हो रहा है अर्थात् उसमें सातों का निर्विकल्प ज्ञान आ जाता है। सात तत्त्व के समक्ष जुदा-जुदा देखने में आत्मा का या सात तत्त्व का यथार्थ ज्ञान नहीं होता, किंतु स्व की अस्ति में परिणमन होने पर तथा सातों के विकल्प के अभावरूप परिणमन होने पर स्व का यथार्थ ज्ञान होने से स्व-पर प्रकाशक स्वभाव के कारण सातों का ज्ञान आ जाता है। इस अपेक्षा से सात अथवा नवतत्त्व की श्रद्धा को सम्यग्दर्शन कहा है, वह उचित ही है।

इसप्रकार जो वैराग्यवंत मुनि उपशमरस में झूलते हैं, स्वभाव में मग्न हो गये हैं; जिस भाँति पूडियाँ घी में डुबाने से निमग्न हो जाती हैं, उसी भाँति आत्मरस में—अकषायरस में निमग्न हैं; अमृत का झरना—शांति का झरना फूटता है; ऐसे शांतरसवाले मुनि के सात तत्त्व के विकल्प से रहित आत्मा वास्तव में उपादेय है। प्रथम रागसहित होने से सात तत्त्व उपादेय नहीं हैं—ऐसा कहा था; और यहाँ आत्मा उपादेय है—ऐसा कहकर अस्ति-नास्ति से कथन किया है। इसमें सम्यग्दर्शन की व्याख्या, वैराग्य की व्याख्या, परिग्रह की व्याख्या, इंद्रियाँ कैसे वर्तती हैं, त्रिकालीस्वभाव तथा सात तत्त्व इत्यादि के संबंध में बहुत स्पष्ट कथन संक्षेप में कर दिया है। इसप्रकार मुनियों को 'आत्मा' वास्तव में उपादेय है। वह आत्मा—कारणपरमात्मा कैसा है, वह आगे कहेंगे।

**शुद्धकारणपरमात्मा औदयिक, औपशमिक, क्षायोपशमिक तथा क्षायिकभाव से अगोचर है।**

कारणपरमात्मा ही वास्तव में आत्मा है। मुनि को तथा धर्मी जीव को आत्मा ही उपादेय है। सात तत्त्वों का रागसहित विचार करना वास्तव में उपादेय नहीं है। सम्यग्दर्शन का ध्येय तो कारणपरमात्मा—शुद्ध आत्मा है और वही मुनि को उपादेय है। इसी के अंतर्गत मुनि कैसे होते हैं, यह बात भी आ गयी।

अब आत्मा किसे कहते हैं यह बात स्पष्ट की जाती है।

**जो औदयिक आदि चार भावांतरों से अगोचर है ऐसा कारणपरमात्मा ही वास्तव में आत्मा है।**

आत्मा में धर्मदशा किस भाव के आश्रय से होती है, वह बात बतलाते हैं। चिदानंद एकरूप शुद्ध परमपारिणामिकस्वभावभाववाला आत्मा है। औदयिकादिक चार भाव, परमपारिणामिक भाव से अन्य हैं, अतः उन चारों भावों को भावांतर कहा है और यह चारों भाव परमपारिणामिकभाव नहीं हैं, इसलिये इन चारों की अपेक्षा से परमपारिणामिकभाव को भी भावांतर कहा जाता है। इसप्रकार अपेक्षाकृत यह दोनों ही परस्पर में भावांतर हैं—ऐसा समझना।

**( १ ) औदयिकभाव :-** दया-दानादि के भाव, हिंसा-असत्यादि के भाव, सच्चे

देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति के भाव, पंच महाव्रत अथवा बारह व्रत के विकल्प, शास्त्र स्वाध्याय, पूजा, भक्ति आदि के भाव औदयिक भाव हैं। इन भावों से विकार का अनुभव होता है, परंतु आत्मा का अनुभव नहीं होता। जिस भाव से तीर्थंकर नामकर्म बँधता है अथवा स्वर्गादि के भव मिलते हैं, वे सब शुभभाव हैं—औदयिकभाव हैं। शुभ के परिणाम में बंध पड़ता है, धर्म नहीं होता; इसलिये औदयिकभाव से आत्मा अगोचर है।

**( २ ) औपशमिकभाव :-** औपशमिकभाव आत्मा की निर्मल पर्याय है, वह कर्म के उपशम की अपेक्षा रखती है। पहले उपशमसम्यग्दर्शन होता है, वह शुद्धस्वभाव के लक्ष से होता है। उपशमसम्यग्दर्शन होने के बाद भी उस उपशमसम्यग्दर्शन के आधार से सम्यक्त्व वृद्धिंगत नहीं होता, तथैव चारित्र भी होता नहीं। उपशमभाव वीतरागी परिणाम होने पर भी है तो पर्याय ही; और पर्याय के लक्ष से तो राग की उत्पत्ति होती है, उससे अभेद होकर आगे नहीं बढ़ा जा सकता, क्योंकि निर्मलपर्याय में से निर्मलपर्याय नहीं आती। उपशमसम्यक्त्व के आधार से उपशमचारित्र अथवा दूसरा चारित्र प्रगट नहीं होता। उपशमसम्यक्त्व अथवा उपशमचारित्र का आधार तो परमपारिणामिकभाव है। उपशमभाव तो स्वयं पर्याय है, अतः उसके लक्ष से राग की उत्पत्ति होती है। इसी अपेक्षा से यहाँ उपशमभाव से आत्मा अगोचर है—ऐसा कहा।

**( ३ ) क्षायोपशमिकभाव :-** धर्मी की क्षयोपशमभावरूप आत्मा की निर्मलपर्याय है, परंतु उसमें निर्मलता कुछ कम है—कुछ मलिनभाव भी है। उसका आश्रय करने से सम्यग्दर्शन नहीं होता, नहीं बढ़ता, तथा चारित्र भी नहीं होता। इसका कारण यह है कि वह स्वयं अवस्था है-पर्याय है, और अवस्था में से अवस्था नहीं होती। शुद्धभाव के आधार से ही सम्यग्दर्शन और चारित्र होता है। क्षायोपशमभाव के लक्ष से विकल्प उठता है, धर्म नहीं होता, अतः उससे भी आत्मा अगोचर कहा।

**( ४ ) क्षायिकभाव :-** क्षायिकसम्यक्त्व, क्षायिकचारित्र, क्षायिकज्ञान, क्षायिकवीर्य आदि क्षायिकभाव हैं। क्षायिकभाव से आत्मा अगोचर है। चतुर्थगुणस्थान में किसी-किसी सम्यक्त्वी जीव को क्षायिकसम्यक्त्व होता है, परंतु क्षायिकसम्यक्त्व के आधार से चारित्र प्रकट नहीं होता, क्योंकि वह पर्याय है। पर्याय के लक्ष से राग उत्पन्न होता है, अभेद में स्थिरता नहीं होती, बारहवें गुणस्थान में क्षायिकचारित्र है, किंतु उस क्षायिकचारित्र की पर्याय के

आश्रय से आगे बढ़ना नहीं होता। तेरहवें गुणस्थान में केवलज्ञान (क्षायिकज्ञान) है। साधक जीव को वर्तमान में केवलज्ञान प्रकट नहीं है और जो प्रकट नहीं है, उसका विचार करने पर राग होता है, अभेदस्वभाव में लीनता नहीं हो पाती। फिर केवलज्ञान होने के पश्चात् भी केवलज्ञान की पर्याय में से केवलज्ञानपर्याय प्रकट नहीं होती, कारण कि केवलज्ञान अंश है और अंश में से अंश आता नहीं, अपितु अंशी जैसा शुद्धस्वभाव ही सभी निर्मलपर्यायों का आधार है। केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनंतवीर्य, अनंत आनंद; यह अनंतचतुष्टय सादि-अनंतकाल तक रहते हैं, उनका आधार शुद्धचैतन्यस्वभाव है, क्षायिकभाव की पर्याय उनका आधार नहीं है। क्षायिकभाव वीतरागीपर्याय है तथापि पर्याय में से पर्याय नहीं आती; उसीप्रकार क्षायिकभाव वर्तमान में प्रकट नहीं होने से उसका विचार करने पर विकल्प उठता है। इस अपेक्षा से क्षायिकभाव से आत्मा अगोचर है—ऐसा कहा।

**औदयिकादि चार भावों के आश्रय से धर्म नहीं होता।**

देव-गुरु-शास्त्र के निमित्त से, शरीर से, अथवा कर्म के मंदोदय से तो धर्म होता ही नहीं, दया-दानादि के शुभभावरूप औदयिक भाव से भी धर्म नहीं और उपशम, क्षयोपशम एवं क्षायिकभाव यद्यपि यह वीतरागीपर्यायें हैं, तो भी उनके आधार से धर्म नहीं होता। इसका कारण यह है कि यह सब स्वयं हैं पर्यायें और पर्याय में से पर्याय नहीं आती है। धर्म तो त्रिकाली परमपारिणामिकस्वभावभाव के आश्रय से ही होता है। चार भावों के आश्रय से धर्म नहीं होता। त्रिकाल की अपेक्षा से एकसमय की पर्याय को भिन्न कहा है। सामान्य की अपेक्षा से विशेषभाव भिन्न है और विशेष की अपेक्षा से सामान्य भी भिन्न है, अन्य है। परमपारिणामिकभाव की अपेक्षा से चार भाव अन्य हैं, और चार भावों की अपेक्षा से परमपारिणामिकभाव अन्य है; अतः अन्य भावों के आश्रय से धर्म नहीं होता, किंतु एकरूप पारिणामिकभाव के आश्रय से ही धर्म होता है।

**दृष्टि क्षायिकभाव को भी नहीं स्वीकारती, वह तो मात्र परमपारिणामिकभाव को ही स्वीकारती है।**

कितने ही अज्ञानी जीव निमित्त से, संहनन से, और पुण्य से धर्म मानते हैं; मनुष्यभव हो तो केवलज्ञान होता है, अथवा व्यवहार का पालन करके भी जीव मोक्ष जाता है। किंतु यह मान्यता अज्ञानभाव है।

यहाँ मुनिराज ने बहुत स्पष्ट बात की है। शरीर, मन, वाणी तो पर हैं, देव-गुरु-शास्त्र भी पर हैं, औदयिकादिभाव भी पर्यायें होने से परद्रव्य हैं। वीतरागता की खान—निमित्त नहीं है, शुभभाव भी नहीं है, और एकसमय की पर्याय भी नहीं है; वीतरागता की खान तो परमपारिणामिकस्वभावभाव जो एकरूप है, वही है। उसी के आश्रय से सम्यक्त्व, चारित्र, शुक्लध्यान, केवलज्ञान, वीतरागी आनंद, परमसुख, अनंतवीर्यादि प्रकट होते हैं।

यहाँ दृष्टि का विषय बतलाया है। दृष्टि तो निमित्त, पुण्य तथा एकसमय की पर्याय को स्वीकारती ही नहीं। अरे! वह तो क्षायिकभाव को भी, जो कि परिपूर्ण शुद्धपर्याय है, स्वीकार नहीं करती; वह तो एकमात्र पारिणामिकभाव को ही स्वीकारती है। अहो! मुनिराज ने चारों भावों के द्वारा आत्मा को अगोचर कहकर बड़ी अद्भुत बात कही है। अनादिअनंत यह एक ही मोक्ष का मार्ग है, क्योंकि 'एक होय त्रयकाल में परमारथ का पंथ' तीनों काल में मोक्ष की रीति एक ही है। इसी मार्ग से अनंतजीव मोक्ष गये, जाते हैं, और भविष्य में जायेंगे।

**अज्ञानी जीव निश्चय और व्यवहार दोनों को उत्थापित करता है जबकि ज्ञानी दोनों को यथार्थ स्थापित करता है।**

शास्त्र में कथन आता है कि क्षायिकसम्यक्त्व तीर्थंकर अथवा श्रुतकेवली के समीप होता है। यहाँ अज्ञानी उनसे सम्यक्त्व होना मान लेता है परंतु ऐसा है नहीं। यदि उनसे ही सम्यक्त्व होता हो तो उनके समीप बैठे हुए सभी जीवों को हो जाना चाहिये। पात्र जीव अपने शुद्धचैतन्यस्वभाव के आश्रय से क्षायिकसम्यग्दर्शन प्रकट करता है तब केवली अथवा श्रुतकेवली की उपस्थिति होती है।

जो जीव उपशमसम्यक्त्व प्रकट करता है, वह पर्याप्तिवाला होता है, संज्ञी पंचेन्द्रिय होता है, इत्यादि अनेक प्रकार से कथन शास्त्रों में आता है, वह सब निमित्त का ज्ञान कराने के लिये है। सभी संज्ञी जीवों को नहीं होता, किंतु जो प्रकट करते हैं, वे संज्ञी इत्यादि प्रकार के होते हैं, वह सब निमित्त का ज्ञान कराते हैं। जो जीव व्यवहार को ही परमार्थरूप माने बैठे हैं, वे व्यवहार और परमार्थ दोनों का ही लोप करते हैं जबकि ज्ञानी तो दोनों को ही जैसे हैं, वैसे स्थापित करते हैं। अपने स्वभाव के आश्रय से सम्यक्त्व प्रकट होता है, वह निश्चय है और उसी समय सच्चे देव, गुरु निमित्त हैं, उनका ज्ञान करना वह व्यवहार है।

**जिसके आधार से केवलज्ञानरूपी कार्य प्रकट हो, वह कारणपरमात्मा कैसा है?**

''कारणपरमात्मा द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्मरूपी उपाधि से जनित विभावगुणपर्याय से रहित है। अनादि अनंत अमूर्त अतीन्द्रियस्वभाववाला शुद्ध सहजपारिणामिकभाव जिसका स्वभाव है ऐसा कारणपरमात्मा है; वह वास्तव में आत्मा है।''

कारणपरमात्मा में ज्ञानावरणादि अष्टकर्मों का अत्यंत अभाव है। वह दया-दानादि के परिणाम से रहित है, उसमें अशुद्धता या मलिनता नहीं है, तथा शरीर, मन, वाणी आदि नोकर्म से रहित है। वह विभावगुण-पर्याय से रहित है, उसका न तो आदि है और न अंत ही; वह तो अनादि अनंत एकरूप नित्यस्वभाव है। उसमें स्पर्श, रस, गंध, वर्ण नहीं है तथा इंद्रियों से भी अज्ञात है। उसका स्वभाव परम पवित्र है, नित्य साथ रहनेवाला है। एकरूप सदृशशक्ति जिसका स्वभाव है—ऐसा कारणपरमात्मा है। द्रव्य शुद्ध, गुण शुद्ध और पर्याय भी शुद्ध है; ऐसा शुद्ध परमपारिणामिकभाव उसका स्वभाव है। जिसप्रकार गुड़ स्वभाववान है और मिठास उसका स्वभाव है; उसीप्रकार कारणपरमात्मा स्वभाववान है और शुद्ध परमपारिणामिकभाव उसका स्वभाव है। ऐसे परमपारिणामिकभाव वाला कारणपरमात्मा है। कारणपरमात्मा कहो, शुद्ध चैतन्यस्वभाव कहो, चिदानंद भगवान कहो, निरुपाधि स्वभावभाव कहो, सब एक ही है। सम्यग्दर्शन का विषय, द्रव्यदृष्टि का विषय कारणपरमात्मा है; वही वास्तव में आत्मा है और वही उपादेय है अर्थात् उसी का आश्रय सदैव करनेयोग्य है।

**त्रिकाली 'शुद्धभाववाले' कारणपरमात्मा के आधार से 'नियमसार' अर्थात् मोक्षमार्ग प्रकट होता है।**

यहाँ कारणपरमात्मा को ही वास्तव में आत्मा कहा है। पुण्य-पाप के भाव को तो आत्मा कहा नहीं; उपशम, क्षयोपशम, क्षायिकभाव को भी आत्मा नहीं कहा; कारण कि वे सभी एकसमय की पर्याय हैं। वे भाव व्यवहारनय के विषय हैं और उन पर्यायों से रहित अनादि-अनंत एकरूप, सदृशशक्तिवाला शुद्धस्वभावकारणपरमात्मा निश्चयनय का विषय है। इस आत्मा को ही श्रद्धा में लेना और अनुभव करना योग्य है। चैतन्यशक्तिस्वरूप कारणपरमात्मा के आधार से नियमसार अर्थात् मोक्षमार्ग प्रकट होता है। यह शुद्धभाव अधिकार है। त्रिकाली शुद्धभाव के आधार से सम्यग्दर्शन प्रकट होकर, मोक्षमार्ग प्रारंभ होकर, मोक्षदशा प्राप्त होती है।

**निकट मुक्तिगामी जीव को त्रिकालीशुद्धस्वभाव एक ही उपादेय है, दूसरा कुछ भी उपादेय नहीं है।**

अति आसन्न भव्य जीवों को ऐसे निज परमात्मा के अतिरिक्त अन्य कुछ भी उपादेय नहीं है। शुद्ध परमपारिणामिक स्वभावभावस्वरूप कारणपरमात्मा अथवा शुद्ध चैतन्यस्वभाव अथवा अपने परमात्मा के अलावा दूसरा कुछ भी उपादेय नहीं है। निमित्त और पुण्य तो अंगीकार करनेयोग्य है ही नहीं; किंतु उपशम, क्षयोपशम अथवा क्षायिकभाव जो एकसमय की पर्याय है, वह भी आदरणीय नहीं है। मात्र एक ध्रुवस्वभाव ही श्रद्धा में लेने योग्य है। निमित्त, शुभराग की पर्याय, निर्मलपर्याय आदि सभी ज्ञान करने के लिये हैं, किंतु आदरणीय तो कदापि नहीं। जिसप्रकार गन्ने का ऊपरी और निचला भाग काट देने पर मध्यभाग रस-कसवाला होता है; उसीप्रकार जिसको मोक्ष की रुचि है, जिसकी मुक्ति निकट है, ऐसे मोक्षार्थी जीव को रागरहित अपना त्रिकालीशुद्धस्वभाव एक ही श्रद्धा करनेयोग्य है। अपने आत्मा का दूसरा कोई अधिष्ठाता नहीं है, इसलिये उसे निजपरमात्मा कहा गया है।

अब ३८वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं:—

जयति समयसारः सर्वतत्त्वैकसारः सकलविलयदूरः प्रास्तदुर्वारमारः।
दुरिततरुकुठारः शुद्धबोधावतारः सुखजलनिधिपूरः क्लेशवाराशिपारः ॥५४॥

सर्वतत्त्वों में जो एक सार है, जो समस्त नष्ट होनेयोग्य भावों से दूर है, जिसने दुर्वार काम को नष्ट किया है, जो पापरूप वृक्ष को छेदनेवाला कुठार है, जो शुद्ध ज्ञान का अवतार है, जो सुखसागर की बाढ़ है, और जो क्लेशोदधि का किनारा है; वह समयसार (शुद्धात्मा) जयवंत वर्तता है।

जिस शुद्धात्मा के आश्रय से सुख प्रकट होकर समस्त क्लेश का अंत आता है, वह शुद्धात्मा कैसा है? यह कहते हैं।

(१) सात तत्त्वों में शुद्धजीवतत्त्व एक ही सार है, अन्य कोई सार नहीं है। संवर, निर्जरा, मोक्ष साररूप नहीं हैं, कारण कि वे एकसमय की पर्याय हैं, उनके लक्ष से राग की उत्पत्ति होती है, अतः वे सार नहीं हैं। परमपारिणामिकभाववाला जीवतत्त्व एक ही सार है।

(२) वह शुद्धात्मा समस्त नाशवान से दूर है। औदयिक, औपशमिक, क्षायोपशमिक

तथा क्षायिक—यह सभी नाशवान भाव हैं; उनसे शुद्धात्मा दूर है। औदयिक, औपशमिक और क्षायोशपमिक भाव तो नाश को प्राप्त होते हैं—किंतु क्षायिकभाव को भी नाशवान कहने का कारण यह है कि केवलज्ञान अथवा सिद्धदशा की पर्यायें भले ही प्रवाहरूप से सादि-अनंतकाल तक रहें तो भी एक पर्याय का काल तो एक समय का ही है। एक समय में एक, दूसरे समय दूसरी, इसप्रकार पर्याय प्रतिसमय पलटती रहती है, इसलिये नाशवान है—ऐसा कहा है। परमपारिणामिकभाव एकरूप अनादि-अनंत रहता है, इसलिये क्षायिकादि चार भावों से शुद्धात्मा दूर है—ऐसा कहा है।

(३) काम=परपदार्थ की इच्छा। त्रिकाली शुद्ध आत्मा का आश्रय लेने से पर की तरफ का झुकाव नाश हो जाता है, ध्रुवस्वभाव के आश्रय से कार्य होता है; ऐसा कहकर शुद्धध्रुवस्वभाव की महिमा बतलाते हैं।

(४) जिसप्रकार कुठार मूल में से वृक्ष को छेदता है, उसीप्रकार शुद्धचैतन्यस्वभाव का आश्रय लेने से मिथ्यात्वादिरूप पाप मूल से विनाश हो जाते हैं और पुनः उगते नहीं। जैसे वृक्ष के मात्र पत्ते जोड़े जायें तो वह पुनः पनप सकता है, किंतु यदि समूल नाश कर दिया जाये तो फिर से उगता नहीं; वैसे ही यहाँ शुद्धचैतन्यस्वभाव का आश्रय करने से संसार का समूल नाश हो जाता है, जिसके कारण शुभ तथा अशुभभावरूपी पत्ते पुनः उत्पन्न नहीं होते।

(५) शुद्धस्वभाव के आश्रय से नवीन यथार्थज्ञान प्रकट होता है, मानो चैतन्य का पिंड आत्मा नया जन्मा हो; ऐसा कहकर शुद्धचैतन्यत्रिकालीस्वभाव को ही शुद्धज्ञान का अवतार कहा है।

(६) परमपारिणामिकभाववाले निजकारणपरमात्मा की दृष्टि करने से अविनाशी सुख प्रकट होता है। निमित्त की, विकार की, अधूरीपर्याय की रुचि छोड़ो और अंतर सहजानंदस्वभाव है, उसकी रुचि करो—ऐसा कहने का भाव है। जिसप्रकार अधिक वर्षा होने से नदियों में बाढ़ आ जाती है अथवा सागर में जल की कल्लोलें उठती हैं; उसीप्रकार यहाँ चैतन्यस्वभाव में समुद्र की तरह ज्ञान, दर्शन, चारित्र, वीर्य, सुख इत्यादि अनंत गुण उछल रहे हैं; उसमें एकाग्रता करने से सुख की प्राप्ति होती है।

(७) दान, दया, काम, क्रोधादिभाव क्लेश हैं। शरीर में सुख है, पुण्य से धर्म है,

निमित्त से लाभ है, इत्यादि अनेक प्रकार से अज्ञानी के पर्यायबुद्धि विलसित हो रही है, वह सब क्लेश का सागर है। शुद्धचैतन्यस्वभाव का आश्रय लेने पर पर्यायबुद्धिरूपी क्लेश का अंत आ जाता है।

शुद्ध आत्मा को अनेक विशेषणों से परिचित कराया और कहा कि शुद्ध आत्मा जयवंत वर्तता है। जिनको भान हुआ है, जिनको अनुभव में वर्त रहा है, वे मुनिराज कहते हैं कि शुद्ध आत्मा जयवंत वर्तता है। कथन का सार यह है कि निमित्त की, शुभराग की, एकसमय की निर्मलपर्याय की पर्यायबुद्धि छोड़ और त्रिकाली शुद्धस्वभाव की रुचि करके स्वभावबुद्धि कर।

अज्ञानी जीव पैसे में, मोटर में तथा अनेक प्रकार के वैभव में सुख मान रहे हैं; किंतु वह तो प्रत्यक्ष राग है और उसमें आकुलता है। स्वभाव का लक्ष चूककर पर में सुख है ऐसी मान्यता करने से पर्याय में आकुलता होती है, वह आत्मा की एकसमय की विकारी दशा है। आकुलता तो अनाकुल स्वभाव का विकृतरूप है और आत्मा विकृतदशारहित है। पुण्य-पाप में जीव लिप्त हो गया है, इसलिये शुद्धस्वभाव दिखायी नहीं देता। आत्मा तो पुण्य-पाप की पर्याय से रहित, शुद्ध, अनाकुलस्वभावी, सुखसागर—ऐसे का ऐसा विराज रहा है। चैतन्यसागर ज्ञान, दर्शन, सुख इत्यादि अनंत गुणों से उछल रहा है, उसमें सुख की बाढ़ आ रही है; अतः संयोगों की तथा निमित्तों की रुचि छोड़ और संयोगों से रहित, पुण्य-पाप से रहित, एकसमय की पर्याय जितना भी नहीं, किंतु अनादिअनंत शुद्ध एकरूप परमपारिणामिकस्वभावभाववाला कारणपरमात्मा विराज रहा है—उसकी दृष्टिकर, उसी की श्रद्धा कर और उसी का आश्रयकर; तभी सम्यग्दर्शन प्रकट होकर सुखदशा को प्राप्त होगा—ऐसा कहने का अभिप्राय है। ऐसा शुद्ध आत्मा जयवंत वर्तता है।

## सततमनुभवामोऽनंतचैतन्यचिह्नं

परमपूज्य आचार्य कुंदकुंद के सर्वोत्तम ग्रंथराज समयसार की अमृतचंद्राचार्यकृत आत्मख्याति टीका के बीच-बीच में अनेक महत्त्वपूर्ण छंद आए हैं, जिन्हें कलश कहते हैं। गाथा १७-१८ में समागत कलश नं० २० एवं गाथा १९ की पूर्वभूमिकारूप टीका पर हुए पूज्य कानजीस्वामी के प्रवचनों का सार यहाँ दिया जा रहा है।

**कथमपि समुपात्तत्रित्वमप्येकताया**
**अपतित मिदमात्मज्योतिरुद्गच्छदच्छम्।**
**सततमनुभवामोऽनंतचैतन्यचिह्नं**
**न खलु न खलु यस्मादन्यथा साध्यसिद्धिः ॥२०॥**

किसी प्रकार से त्रित्व अंगीकार किया होने पर भी जो एकत्व से च्युत नहीं हुई और जो निर्मलता से उदय को प्राप्त हो रही है, ऐसी अनंत चैतन्यलक्षणवाली आत्मज्योति का हम निरंतर अनुभव करते हैं, क्योंकि उसके अनुभव बिना अन्य प्रकार से साध्य-आत्मा की सिद्धि नहीं होती।

आचार्यदेव कहते हैं :- हम अनंत चैतन्यलक्षणवाली आत्मज्योति का निरंतर अनुभव करते हैं। आत्मा का लक्षण अनंत चैतन्यस्वभाव है। देहादि से तो आत्मा भिन्न है ही, परंतु राग से भी भिन्न ही है। इसलिये राग भी आत्मा का चिह्न नहीं है। राग या निमित्त द्वारा आत्मा की साध्य-सिद्धि नहीं होती, अनंत चैतन्यचिह्नवाली आत्मज्योति के निरंतर अनुभव से साध्य-सिद्धि होती है। इसलिये आचार्यदेव कहते हैं कि हम निरंतर चैतन्यस्वरूप आत्मा की अनुभूति करते हैं। छठवें गुणस्थान में शुभविकल्प होते हुए भी आचार्य कहते हैं कि हम निरंतर ज्ञायक आत्मा की अनुभूति करते हैं अर्थात् शुभविकल्प के समय भी उन्हें राग के अनुभव की प्रधानता नहीं है। स्वसंवेदनज्ञान, निर्विकल्प प्रतीति और रागरहित आचरण—ये तीनों चैतन्य के अनुभव में गर्भित हैं।

आत्मा नित्य चैतन्यरूप है, इसलिये उसका अस्तित्व देह अथवा रागमय नहीं है। अत: आचार्यदेव 'मैं देह और राग से भिन्न स्वतंत्र ज्ञायक भावरूप हूँ'—इसप्रकार पूर्णस्वभाव की प्रतीति करके अविकारी आत्मज्योति का निरंतर अनुभव करते हैं।

सर्वप्रथम चैतन्यस्वभाव की प्रतीतिरूप श्रद्धा में ज्ञानी ऐसा अनुभव करते हैं कि—'मैं नित्य एकरूप, अमृत का पिंड हूँ; देहादि एवं पुण्य-पाप के विकारी भाव मृतक कलेवर हैं, चेतन नहीं; देहादि और रागादि नाशवान हैं और मैं नित्य अविनाशी ज्ञानस्वभावी हूँ।

पूर्णस्वभाव के एकाकार लक्ष्य के बल से स्वरूप की एकाग्रता बिना अन्य किसी प्रकार से शुद्धात्मा की प्राप्ति नहीं होती। आचार्यदेव कहते हैं 'न खलु न खलु यस्मात् अन्यथा साध्यसिद्धि:' अर्थात् इस रीति के अतिरिक्त साध्य-सिद्धि का अन्य कोई भी उपाय नहीं है।

अनंत चैतन्यचिह्नवाली आत्मज्योति पर्याय की अपेक्षा दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप परिणमती है, इसलिये व्यवहार से त्रित्व होते हुए भी वह परमार्थ से अपने एकत्व स्वभाव को नहीं छोड़ती।

व्यवहारदृष्टि से देखने पर आत्मा दर्शन, ज्ञान, चारित्ररूप परिणमता है। पूर्णस्वभाव की प्रतीति करनेवाली श्रद्धा, पर से भिन्न नित्यज्ञानानन्दस्वभावी आत्मा को जाननेवाला ज्ञान, और स्वाश्रय से होनेवाला स्थिरतारूप चारित्र—इसप्रकार त्रित्व होने पर भी एकरूप आत्मा कभी तीनभेदरूप नहीं होता। रागमिश्रित विचार से देखने पर तीन भेद दिखायी देते हैं, किंतु निश्चय से आत्मा नित्य अभेदरूप एकस्वभावी है। अखंड अभेदस्वभावी आत्मा के लक्ष्य से स्वरूप में सावधान होने से प्रतिक्षण निर्मल अवस्था प्रगट होती है तथा आचार्यदेव निरंतर उस निर्मल आत्मज्योति का अनुभव करते हैं। सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा भी गृहस्थ अवस्था में आंशिकरूप से निर्मल आत्मज्योति का अनुभव करते हैं।

आचार्यदेव एकसमय का भी अंतर डाले बिना अखंडस्वरूप में लीन होकर ज्ञानस्वभाव का ही अनुभव करते हैं, अनंत गुणों की एकाग्रता में लीन होकर उन्हीं का स्वाद लेते हैं। यद्यपि आचार्यदेव को शास्त्र-रचना करने का तथा धर्मोपदेश आदि का शुभ विकल्प भी आता है, तथापि उन्हें उससमय उस अस्थिरताजन्य राग की मुख्यता नहीं है, निर्विकल्पस्वरूप में ही स्थिर होने की मुख्यता है। वर्तमान पुरुषार्थ की कमजोरी से उठनेवाली पुण्य-पाप की वृत्ति को जानते हुए भी आचार्यदेव दृष्टि में उन वृत्तियों को स्वीकार नहीं करते।

अखंड निर्मलस्वभाव के बल से परावलंबी वृत्तियों का निरंतर नाश होता रहता है और निर्मल गुणों का अनुभव बढ़ता रहता है—इस अपेक्षा से यह कहा है कि आचार्यदेव निरंतर चिदानंदस्वरूप का अनुभव करते रहते हैं।

आत्मा के साध्य की सिद्धि के लिये आचार्यदेव ने आत्मा के ज्ञान, श्रद्धान और आचरण का उपदेश दिया है तो शिष्य प्रश्न करता है कि आत्मा तो ज्ञान के साथ तादात्म्यरूप है, इसलिये वह ज्ञान का नित्य सेवन करता ही है तो फिर ज्ञान की उपासना करने की शिक्षा क्यों दी जाती है? जिसप्रकार अग्नि और उष्णता अलग नहीं है इसलिये अग्नि को उष्णता का सेवन करने का उपदेश देना निरर्थक है; उसीप्रकार आत्मा स्वयं ज्ञानस्वरूप है, अन्यरूप नहीं, ज्ञानस्वरूप होने से वह ज्ञान ही का सेवन करता है; फिर आत्मा को ज्ञान की उपासना का उपदेश देना भी निरर्थक है।

शिष्य ने अंधश्रद्धा से न मानकर जिज्ञासाभाव से प्रश्न किया है। आचार्यदेव ज्ञान की ही सेवा की प्रेरणा दे रहे हैं। जड़-देहादि की क्रिया तो कोई कर नहीं सकता और पुण्य-पाप के राग में लग जाना भी आत्मा की सेवा नहीं है, क्योंकि आत्मा पुण्य-पाप से भिन्न ज्ञानस्वभावी है—इसलिये ज्ञान की ही सेवा करनी चाहिये—इतना सत्य तो शिष्य के हृदय में जम गया है।

इस जीव को शाश्वत सुख प्राप्त करने का उपाय सुनने को मिले; परंतु यदि यह उसे भावपूर्वक सुनकर विचारपूर्वक सत्य का निर्णय न करे, सत्य के प्रति बहुमान और आंतरिक उत्साह न हो; तब तक अज्ञानी ही रहता है। सत्य जानने के लिये मनन-मंथन न करे तो समझना चाहिये कि सत्य की रुचि नहीं है।

जैसे किसी मकान के द्वार और खिड़कियाँ बहुत दिनों से बंद हों तो उन्हें खोलने पर जब भीतर वायु प्रवेश करती है, तब उसके भीतर का कूड़ा-कचरा इधर-उधर उड़ने लगता है; तब यदि कोई अज्ञानी खेद करे कि इससे अच्छा तो यह था कि द्वार और खिड़कियाँ बंद ही रहतीं तो कचरा नहीं उड़ता—ऐसा कहनेवाले ने कचरे को योग्य मान लिया है, क्योंकि उसे स्वच्छता की महिमा का ज्ञान नहीं है। इसीप्रकार यदि कोई कहे कि आत्मा तो दिखायी नहीं देता और उसे समझने के लिये समझ के द्वार खोलकर गहराई में उतरकर शंका करके आकुलता पैदा करने की अपेक्षा तो अनादि से जैसी अज्ञानदशा है, वही ठीक है। परंतु ऐसा मानने पर अज्ञान दूर नहीं होगा और यथार्थ समझ नहीं होगी। अतः समझने के लिये अवश्य

पूछना चाहिये और यथार्थ बात का समझपूर्वक मेल बैठाना चाहिये।

हित-अहित और सत्य-असत्य का निर्णय न करे और धर्म के नाम पर जहाँ-तहाँ 'हाँ जी', 'बराबर', 'सत्यवचन महाराज' कहे तो इससे कोई लाभ नहीं होगा। यद्यपि कोई आत्मा किसी दूसरे से समझ नहीं सकता और न कोई दूसरे को समझा ही सकता है, तथापि स्वयं अपनी जिज्ञासा से सत्य को समझे तो समझानेवाले को व्यवहार से निमित्त कहा जाता है।

शिष्य की शंका का समाधान करते हुए श्रीगुरु कहते हैं कि यद्यपि आत्मा ज्ञान के साथ तादात्म्यरूप से है तथापि वह एकक्षणमात्र भी ज्ञान का सेवन नहीं करता, क्योंकि स्वयंबुद्धत्व अथवा बोधितबुद्धत्व—इन कारणों से ज्ञान की उत्पत्ति होती है। ये कारण मिलने से पूर्व अप्रतिबुद्ध होने से जीव सदा अज्ञानी ही है।

जैसा स्वभाव है, वैसा ही निश्चय करके मानना, जानना और आचरण करना ही सच्ची सेवा है। यद्यपि आत्मा ज्ञानादि अनंतगुणों से तादात्म्यरूप है; तथापि अनंतकाल से उसने एकसमयमात्र भी अपने गुणों की सेवा नहीं की है। पराश्रय छोड़कर स्वाश्रयपूर्वक अंतर्मुख होना ही ज्ञानस्वभाव की सेवा है। परंतु आत्मा ने एक समय भी ऐसी सेवा नहीं की।

इस जीव ने अनादिकाल से अपने को भूलकर दूसरे पर विश्वास जमा रखा है। कुछ करूँ तो ठीक है—इसप्रकार बाह्योन्मुखता द्वारा राग की ही सेवा की है। यह जीव अपनी सेवा कर सकता है, परंतु वह तो की नहीं और पर का कुछ कर नहीं सकता, फिर भी पर के कर्तृत्व का अभिमान किया है। धर्म के नाम पर भी बाह्य में सब-कुछ किया और राग-द्वेष का ही सेवन करता रहा। यदि यह जीव एकक्षणमात्र भी आत्मा की सेवा करे तो उसके अनादिकालीन जन्म-मरण और बंधन का अभाव हो जाए।

अज्ञानी जीव ने विपरीत मान्यता से परभावों का ही सेवन किया है। यदि एकसमयमात्र भी स्वभाव का सेवन करे तो संसार में परिभ्रमण न रहे। अनादि का अज्ञानी जीव स्वयंबुद्धत्व अथवा बोधितबुद्धत्व से जागृत होकर ज्ञानी बन जाता है। वर्तमान में ज्ञानी की उपस्थिति बिना ही स्वयं अपने-आप आत्मस्वभव को जान लेना स्वयंबुद्धत्व है। और सच्चे गुरु की उपस्थिति में उनके द्वारा प्राप्त बोध के निमित्त से आत्म-ज्ञान होना बोधित-बुद्धत्व है। सच्चे गुरु के निकट अपनी रुचि के बल से जो यथार्थ सत्य को सुनता है, उसे देशनालब्धिरूप कारण कहा जाता है

और पूर्व में गुरु-मुख से सुना था और वर्तमान में गुरु का निमित्त विद्यमान न होने पर भी स्वयं अपनी जिज्ञासा से स्वभाव-सन्मुख होकर यथार्थस्वरूप को जाने तब गुरुगम-निमित्त कहलाता है। इसप्रकार स्वयंबुद्धत्व और बोधितबुद्धत्व इन दो दशाओं में अपने पुरुषार्थपूर्वक निर्मलअवस्थारूप कार्य की उत्पत्ति होती है।

स्वाश्रित ज्ञान प्रगट हुए बिना स्वरूप की सेवा नहीं की जा सकती। यह जीव अनादिकालीन पराश्रय को छोड़कर, नित्य स्वाधीन ज्ञानस्वभाव की दृढ़तारूप स्वसन्मुख पुरुषार्थ होने पर, स्वयं स्वभाव से ही जागृत होता है अथवा स्वरूप समझने की उत्कृष्ट आकांक्षापूर्वक गुरु के पास जाकर उनके उपदेश के निमित्त से स्वरूप को समझता है। जैसे सोया हुआ पुरुष स्वयं अपने आप जागृत हो जाता है या उसकी जागने की तैयारी होने पर कोई जगानेवाला निमित्त मिल ही जाता है, तब स्वयं जागृत होता है। पहले कथन में उपादान की मुख्यता है और दूसरे कथन में निमित्त की मुख्यता है, किंतु दोनों दशाओं में जागता स्वयं अपने पुरुषार्थ से ही है।

यहाँ पुनः प्रश्न होता है कि ज्ञानी होने के उपर्युक्त दोनों कारणों से पूर्व क्या यह आत्मा अज्ञानी ही रहता है? इस प्रश्न के उत्तर में आचार्यदेव कहते हैं कि ऐसा ही है। स्वयंबुद्धत्व या बोधितबुद्धत्व से पूर्व यह जीव अज्ञानी ही रहता है। समयसार में पर में अपनत्व माननेवाले अत्यंत अप्रतिबुद्ध को समझाने के लिये ही उपदेश है।

पर में एकत्वरूप अज्ञान कब तक रहेगा? ऐसा पूछनेवाले अज्ञानी जीव को अज्ञान दूर करने की जिज्ञासा हुई है। उसे ऐसी भावना है कि अब अधिक समय तक अज्ञान न रहे। यथार्थ तत्त्व को समझनेवाला जीव अल्पकाल में मुक्ति को प्राप्त करता है।

अनादि से अज्ञानदशा होने पर भी भूल और अशुद्धता एकसमय की अवस्थामात्र में हैं अर्थात् त्रैकालिकस्वभाव में अज्ञान और रागद्वेष प्रविष्ट नहीं हुए। त्रिकाली शक्ति में कोई अल्पता या विपरीतता नहीं है। मात्र एकसमय की अवस्था में भूल है—जिसका स्वरूप अगली (१९वीं) गाथा में कहेंगे।

# द्रव्यसंग्रह प्रवचन

**वृहद्द्रव्यसंग्रह पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन सन् १९५२ में हुए थे। जिज्ञासु पाठकों के लाभार्थ उन्हें यहाँ क्रमशः दिया जा रहा है।**

[गतांक से आगे]

यहाँ आत्मा के तीन भेद कहे हैं:—(१) बहिरात्मा, (२) अंतरात्मा (३) परमात्मा।

(१) बहिरात्मा :- आत्मा निर्दोषज्ञानस्वभावी है। उसकी दृष्टि छोड़कर शरीर, स्त्री, पुत्र, कुटुंब को अपना मानता है, तथा पुण्य-पाप को अपना मानता है, वह बहिरात्मा है। जिसको इंद्रियों के विषयों में प्रेम है, उसही प्रकार पुण्य-पाप में रुचि है—उसको आत्मा की रुचि नहीं है, वह अज्ञानी है। इस जगत में छह द्रव्य हैं, प्रत्येक स्वतंत्र है, जीव की वर्तमान दशा भी स्वतंत्र है-वह कर्म के कारण से नहीं है। पुण्य-पाप जितना ही अपने को मानता है और त्रिकालीस्वभाव को स्वीकार नहीं करता है—ऐसा जीव बहिरात्मा है।

(२) अंतरात्मा :- आत्मा में विकार होता है, वह क्षणिक है, त्रिकालीस्वभाव में वह नहीं है। स्वभाव तो नित्य है और वही आदरणीय है। इसप्रकार जिसको स्वभाव का आदर वरतता है और राग का ज्ञान वरतता है, वह अंतरात्मा है।

(३) परमात्मा :- शुद्धस्वभाव का भान करके परिपूर्ण ज्ञान और आनंददशा प्रगट करता है, वह परमात्मा है।

बहिरात्मपना वह अधर्मदशा है, अंतरात्मपना धर्मदशा है, और परमात्मपना वह धर्म की फलदशा है।

यह द्रव्यसंग्रह नेमीचंद्र सिद्धांतचक्रवर्ती ने बनाया है, जिनको षट्खंड आगम का ज्ञान था। जो छहखंड को जीते (साधे) वह चक्रवर्ती कहलाता है। उसीप्रकार षट्खंड आगम का ज्ञान मतिज्ञान द्वारा जो साधता है (जानता है) उसको सिद्धांतचक्रवर्ती कहा जाता है।

वे कहते हैं कि आत्मा तीन प्रकार का है। उसमें मिथ्यादृष्टि अथवा बहिरात्मा संख्या की दृष्टि से अनंत हैं। मनुष्य में संख्यात और स्वर्ग-नरक में और तिर्यंचों में अंतरात्मा असंख्यात हैं, इसप्रकार कुल असंख्यात अंतरात्मायें हैं। और सिद्ध परमात्मा की संख्या अनंत है।

अब मिथ्यादृष्टि भव्यजीव की बात करते हैं। ऐसे जीव में बहिरात्मपना व्यक्तरूप से है। शरीर वगैरह बाहर के पदार्थों को मैं त्याग करता हूँ, ग्रहण करता हूँ, मैं हूँ तब बाहर की व्यवस्था चलती है और वह मुझे ठीक लगती है—ऐसा अभिमान प्रगटरूप से विद्यमान है। फिर भी शक्तिरूप से तो उसको अंतरात्मपना और परमात्मपना बरतता है। 'आत्मा शुद्ध चैतन्यमूर्ति है'—ऐसा ज्ञान करके अंतरात्मपना प्रगट करने की शक्ति; उस ही प्रकार वैसे भानसहित स्थिरता करके पूर्ण परमात्मा होने की शक्ति भव्य मिथ्यादृष्टि में होती है। जिसप्रकार दियासलाई की तीली में अग्नि प्रगट होने की शक्ति है; उसीप्रकार आत्मा में केवलज्ञान की शक्ति भरी हुई है, वह अंतर में (चैतन्य में) एकाग्र होने से प्रगट होती है।

कुछ लोग केवलज्ञान को सत्तारूप कहते हैं, लेकिन यह बात सत्य नहीं है। केवलज्ञान प्रगट है, लेकिन उसको कर्म के बादल ढँके हुए हैं, यह बात असत्य है। संसारी छद्मस्थ के लिये केवलज्ञान प्रगटरूप से नहीं है, किंतु शक्तिरूप से है। लींडी पीपर में चरपरेपन की शक्ति भरी हुई है, वह पीपर सीधी मात्र देखने से चरपरी नहीं लगती, लेकिन चरपरापन अंदर है, उसमें से वह व्यक्त होता है। पत्थर के कारण चरपरापन नहीं आता, पत्थर और पीपर एक-दूसरे को छूते नहीं हैं, दोनों वस्तुयें भिन्न हैं। दोनों के बीच अन्योन्यभाव है, इसलिये दोनों भिन्न रहकर काम करते हैं। आत्मा में केवलज्ञान शक्ति भरी हुई है। अंतर में एकाग्र होता है तब धर्म होता है, और पूर्णदशा प्रगट करता है, तब परमात्मा होता है। आत्मा का 'ज्ञ' और आनंदस्वभाव है—उसमें से परमात्मदशा प्रगट होती है, वह बाहर से नहीं होती है।

और फिर भव्य मिथ्यादृष्टि जीव भावीनैगमनय की अपेक्षा से अंतरात्मा तथा परमात्मा व्यक्तरूप से भी है। जैसे राजा का पुत्र भविष्य में राजा होगा उसका आरोप वर्तमान में उसके लिये राजा की हैसियत से करते हैं। उसीप्रकार भव्य जीव को स्वयं में शक्तिस्वभाव मौजूद है, उसके आश्रय से अंतरात्मपना तथा परमात्मपना प्रगट करेगा, उसका आरोप वर्तमान में करते हैं, वह भावीनैगमनय से है। आत्मा नित्य होने पर भी नयी-नयी अवस्था धारण करता है, सर्वथा कूटस्थ नहीं है। यदि आत्मा बदलता ही न हो, तब वर्तमान में नया-नया कार्य (पर्याय) नहीं होता। और यदि आत्मा मात्र बदलता ही रहे तब दुःख-सुख भोगनेवाला नहीं रहेगा, इसलिये आत्मा नित्य और अनित्य है। इसप्रकार जो विश्वास करते हैं, वे भविष्य में अंतरात्मा तथा परमात्मा होते हैं, उसका आरोप वर्तमान में करते हैं।

देखो! आत्मा में केवलज्ञान शक्तिरूप से है लेकिन सत्तारूप से नहीं है, यह बात सिद्ध करते हैं। कमल की छोटी कली सूर्य के निमित्त से खिलती है, वह सूर्य के कारण नहीं खिलती है। यदि सूर्य के कारण खिलती हो तो लकड़ी का बना हुआ कमल भी खिलना चाहिये, किंतु उसमें खिलने की शक्ति नहीं है, इसलिये नहीं खिलता। कमल की कली में अंतर्शक्ति है, इसलिये वह पूर्णकमलरूप से खिल उठती है। उसीप्रकार आत्मा में अंतरात्मा और परमात्मा होने की शक्ति है, वह खिल उठती है, किंतु वह बाहर की क्रिया से अथवा पुण्य की क्रिया से नहीं खिलती है।

इस पर से निम्नलिखित बातें सिद्ध होती हैं। (१) आत्मा द्रव्य है, अवस्था में बदलता होने पर भी अंतर में शक्तियाँ नित्य रहती हैं। (२) स्वयं की शक्तियों का भान नहीं होने से और बहिर्मुख दृष्टि होने से जीव को वर्तमान में दुःख है। (३) वह दुःख वर्तमान में होने पर भी अंतर्मुखदृष्टि का भरोसा करता है, तब दुःख दूर होकर सुख उत्पन्न होता है। अधर्मदशा बदलकर धर्मदशा प्रगटती है और स्वयं नित्य रहता है। (४) वह धर्मदशा उसके अवलंबन से होती है। स्वयं की शक्ति के अंतर-अवलंबन से धर्मदशा प्रगटती है, किंतु देह की क्रिया से अथवा पुण्य-पाप की क्रिया से प्रगट नहीं होती है।

इसप्रकार द्रव्य सिद्ध किया, वर्तमान दुःख बताया, वह बदल सकता है और धर्म तथा सुखदशा हो सकती है, और वह अंतर के आधार से होती है किंतु बाहर से नहीं होती है; इसप्रकार बताया। [क्रमशः]

## अपना घर

पशु चारा चरकर घर आता है और दरवाजा बंद होने पर सिर मारकर भी अंदर जाना चाहता है, क्योंकि सारी रात घर रहना है न! घर को अपना माना है न! उसीप्रकार सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा ने आत्मा का घर देखा है; अतः अपार प्रतिकूलता होने पर भी पुरुषार्थ करके निजघर में आकर विश्रांति लेता है।

# ज्ञान-गोष्ठी

सायंकालीन तत्त्वचर्चा के समय विभिन्न मुमुक्षुओं द्वारा पूज्य स्वामीजी से किये गये प्रश्न और स्वामीजी द्वारा दिये गये उत्तर।

**प्रश्न**– इस आत्मा का स्वरूप विचार में आने पर भी प्रगट क्यों नहीं होता ?

**उत्तर**– इसके लिये योग्य पुरुषार्थ चाहिये। अंदर में अपार शक्ति पड़ी है, उसका माहात्म्य आना चाहिये। वस्तु तो प्रगट है ही, अप्रगट तो पर्याय की अपेक्षा से उसे कहा जाता है। वस्तु तो प्रगट ही है, वह कहीं आवरण से आच्छादित नहीं है। हाँ—प्रथम, वस्तु का माहात्म्य आना आवश्यक है। कुछ लोग कहते हैं कि भान हो तो माहात्म्य आवे; परंतु ऐसा है नहीं। सर्वप्रथम माहात्म्य आना चाहिये, पश्चात् माहात्म्य आते-आते भान हो जाता है।

**प्रश्न**– आत्मवस्तु अव्यक्त है तो फिर जानने में कैसे आवे ?

**उत्तर**– वर्तमान वर्तती पर्याय व्यक्त है-प्रगट है। वह पर्याय कहाँ से आती है ? कोई वस्तु है उसमें से आती है या कहीं अधर में से आती है ? तरंग है, वह पानी में से आती है या कहीं अधर में से आती है ? उसी भाँति पर्याय है, वह भी अधर में से नहीं आती अपितु वस्तु अव्यक्त-शक्तिरूप है, उसमें से आती है। व्यक्त पर्याय अव्यक्त आत्मशक्ति को प्रसिद्ध करती है-उसका अस्तित्व बताती है।

**प्रश्न**– जबकि आत्मस्वभाव सुख का सागर है तो वर्तमान में उस सुख का एक अंश भी क्यों अनुभव में नहीं आता ?

**उत्तर**– आत्मा सुख का सागर होने पर भी उसने राग में एकत्वबुद्धि अनादिकाल से बना रखी है, इसलिये स्वभाव से सुखांश प्रगट नहीं होता। राग के साथ एकत्वबुद्धि का धागा तोड़कर उससे भेदज्ञान करे तो स्वभाव में से सुखांश प्रगट हो।

**प्रश्न**– पर्याय में प्रभुता कैसे प्रगट हो ?

**उत्तर**– तू रागादि से निर्लेपस्वरूप प्रभु है। कषायोत्पत्ति हो उसे मात्र जानना–यही तेरी प्रभुता है। कषाय में एकत्वबुद्धि करके निजत्व स्थापित करना तेरी प्रभुता नहीं है। भाई! तू निर्दोष वस्तु है–तुझे कषाय का लेप लगा ही नहीं है। आत्मा तो सदा ही कषायों से निर्लिप्त है। जैसे स्फटिकमणि में पर का प्रतिबिंब पड़ता है वैसे ही कषायभाव–विभावभाव ज्ञान में जाने जाते हैं—वे तेरे में प्रविष्ट नहीं हो जाते। तू तो निर्लेप है। व्रतादि के विकल्प आते हैं वे तो इस ज्ञायक से भिन्न संयोगी भाव हैं, ज्ञायक की जाति के नहीं; अतः कुजाति हैं, परजाति हैं, परज्ञेय हैं—स्वजाति या स्वज्ञेय नहीं। तू ज्ञायकस्वरूप निर्लेप प्रभु है। इस प्रभुता का अंतर में विश्वास करने पर पर्याय में प्रभुता प्रगट होती है।

**प्रश्न**– क्या केवलज्ञानावरणीकर्म में इतनी शक्ति है कि केवलज्ञान को न होने दे? अथवा केवलज्ञान को रोके रखे?

**उत्तर**– कर्म तो आत्मा से भिन्न वस्तु है। केवलज्ञानावरणीकर्म केवलज्ञान को रोकता नहीं है। वहाँ तो कर्म–परमाणु के परिणमन की उत्कृष्ट शक्ति कितनी है, वह बताने के लिये–केवलज्ञानावरणीकर्म से केवलज्ञान उत्पन्न नहीं हो पाता—ऐसा निमित्त से कथन किया है, परंतु केवलज्ञान कहीं उस कर्म के कारण रोका नहीं जाता है। जब जीव अपनी शक्ति की हीन परिणमनरूप योग्यता से परिणमन करता है, तब कर्म को निमित्त कहा जाता है।

**प्रश्न**– यह सोनगढ़ में निर्मित परमागम मंदिर आदि किसी जीव के किये बिना ही स्वयं बन गये हैं तो क्या जीव ने कुछ भी नहीं किया?

**उत्तर**– पुद्गल अपने स्वकाल में परिणमन करके परमागम मंदिर आदि रूप से हुए हैं, जीव ने उसमें कुछ भी किया नहीं है। जीव ने तो अपने में शुभभाव किया था, परंतु उससे हुआ नहीं है। परमाणु ही स्वतंत्ररूपेण कर्ता होकर परमागम मंदिर आदि कार्यरूप हुए हैं।

# समाचार दर्शन

## पूज्य स्वामीजी के सान्निध्य में जिनमंदिर का शिलान्यास

**बड़ौदा ( गुज० ) :-** दिनांक ५-१२-७८ से ९-१२-७८ तक पूज्य गुरुदेवश्री की छत्रछाया में श्री आदिनाथ दिगंबर जिनमंदिर का शिलान्यास श्री रमणीकभाई रोनकवाले, श्री शांतिभाई जवेरी बम्बई एवं श्री जगदीशभाई जवेरी बम्बई के द्वारा संपन्न हुआ। प्रतिदिन प्रातः तथा दोपहर में पूज्य स्वामीजी के प्रवचन तथा रात्रि में तत्त्वचर्चा चलती थी। रात्रि में पंडित खीमचंदभाई के प्रवचन भी चलते थे। समस्त कार्यक्रम पंडित बाबूभाई मेहता के निर्देशन में संपन्न हुये। समारोह में विभिन्न स्थानों से लगभग १५०० धर्मप्रेमी बंधु पधारे थे। इस अवसर पर लगभग २ लाख ७८ हजार रुपये प्राप्त हुए। पूज्य स्वामीजी के मंगल प्रवचनों से अभूतपूर्व धर्मप्रभावना हुई।

## एक के बजाय तीन-तीन शिविर

दिनांक २४-१२-७८ से १-१-७९ तक अ० भा० जैन युवा फैडरेशन के तत्त्वावधान में श्री टोडरमल दिगंबर जैन सिद्धांत महाविद्यालय के छात्रों द्वारा मेरठ में लगनेवाले आध्यात्मिक शिक्षण-शिविर के अवसर पर सरधना समाज तथा हस्तिनापुर तीर्थक्षेत्र कमेटी के विशेष आग्रह पर मेरठ के अतिरिक्त वहाँ भी शिक्षण-शिविर लगाये गये।

**मेरठ :-** यहाँ डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल के निर्देशन में शिक्षण-शिविर चलाया गया। आपके यहाँ विभिन्न विषयों पर हुए व्याख्यानों के अतिरिक्त प्रतिदिन अन्य विद्वानों के भी दोनों समय प्रवचन चलते थे। स्थानीय तीरगरान दि० जैन मंदिर, विद्यानंद जैन जूनियर हाईस्कूल, जैन बोर्डिंग, तथा जैन धर्मशाला में कक्षाएँ चलती थीं। शिविर में लगभग ३०० विद्यार्थियों ने भाग लिया। अध्यापनकार्य श्री टोडरमल महाविद्यालय के छात्र सर्वश्री ब्रह्मचारी अभिनंदनकुमारजी, अभयकुमारजी, श्रेयांसकुमारजी, कमलेशकुमारजी, पदमाकर मुंजोले, राजकुमारजी ने तथा श्रीमती गुणमाला भारिल्ल, श्रीमती कमला भारिल्ल, श्री अध्यात्मप्रकाश, सुश्री अध्यात्मप्रभा व श्री शुद्धात्मप्रकाश ने किया। अंत में दिनांक १-१-१९७९ को माननीय श्री कपूर साहब, अध्यक्ष, जनता पार्टी, मेरठ की अध्यक्षता में पारितोषिक एवं प्रमाण-पत्र वितरित किये गये। डॉ० भारिल्ल के सारगर्भित व्याख्यानों से समाज में विशेष धर्मप्रभावना हुई।

**सरधना :-** स्थानीय समाज के प्रमुख श्री कैलाशचंदजी—मंत्री, त्रिलोक शोध संस्थान, हस्तिनापुर तथा श्री हुकमचंदजी जैन—मंत्री, दिगंबर जैन परिषद् के विशेष आमंत्रण पर इन्हीं दिनों में पंडित रतनचंदजी भारिल्ल के निर्देशन में यहाँ भी आध्यात्मिक शिक्षण-शिविर का आयोजन किया गया। दोपहर तथा रात्रि में हुए आपके तात्त्विक प्रवचनों से स्थानीय समाज ने विशेष लाभ उठाया। स्थानीय श्री नमिसागर जैन इंटर कॉलेज, जैन गर्ल्स जूनियर हाईस्कूल, जैन कन्या प्राईमरी पाठशाला, वीर बाल सदन, तथा जैन प्राईमरी पाठशाला में कक्षाओं का संचालन किया गया, जिससे लगभग १५०० विद्यार्थियों ने लाभ उठाया। अध्यापन कार्य श्री रतनचंदजी भारिल्ल के अतिरिक्त श्री टोडरमल महाविद्यालय के छात्र सर्वश्री राकेशकुमारजी, सुदीपकुमारजी, शिखरचंदजी, महावीर पाटिल, प्रेमचंदजी शास्त्री तथा फैडरेशन के महामंत्री श्री अखिल बंसल एवं मंत्री श्री परमात्मप्रकाशजी करते थे।

दिनांक २८-१२-७८ को डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल शिविर का निरीक्षण करने हेतु पधारे। आपका दोपहर को अत्यंत मार्मिक प्रवचन हुआ जिससे समाज बहुत प्रभावित हुई तथा आपसे पुनः पधारने का अनुरोध किया। फलतः दिनांक ३०-१२-७८ को श्री नमिसागर जैन इंटर कॉलेज में विशाल जनसमुदाय के मध्य अहिंसा विषय पर आपका प्रभावशाली व्याख्यान हुआ।

**हस्तिनापुर :-** यहाँ भी तीर्थक्षेत्र कमेटी व गुरुकुल के अधिकारियों के विशेष आग्रह पर ब्रह्मचारी पंडित जतीशचंदजी के निर्देशन में शिक्षण-शिविर लगाया गया। आपके साथ श्री संतोषकुमारजी ने भी कक्षाएँ लीं। यहाँ लगभग ४० विद्यार्थियों ने लाभ उठाया। अंत में दिनांक १-१-७९ को डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल ने उत्तीर्ण विद्यार्थियों को प्रमाण-पत्र एवं पारितोषिक वितरण किये। आपका यहाँ एक मार्मिक प्रवचन भी हुआ। गुरुकुल के मंत्रीजी ने प्रतिवर्ष ७ छात्र श्री टोडरमल महाविद्यालय में भेजने की इच्छा व्यक्त की तथा वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा-बोर्ड, जयपुर का पाठ्यक्रम गुरुकुल में चलाने का निर्णय किया।

उक्त तीनों ही स्थानों पर प्रातःकाल पूजा एवं सायंकाल सामूहिक भक्ति के कार्यक्रम विशेष आकर्षण के केंद्र रहे। लगभग सात हजार का साहित्य बिका तथा जैनपथ प्रदर्शक एवं आत्मधर्म के अनेक ग्राहक बने। यहाँ से प्रभावित होकर खतौली आदि स्थानों पर भी शिविर

लगाने की माँग की गयी। समाज में बड़ी संख्या में सोनगढ़, जयपुर तथा श्री सम्मेदिशखरजी में लगनेवाले शिविरों में आने का संकल्प व्यक्त किया। मेरठ एवं सरधना की जैन संस्थाओं के अधिकारियों व अध्यापकों ने तथा गुरुकुल के अध्यापकों ने प्रशिक्षण शिविर में आने की भावना व्यक्त की।

इन शिविरों में सोनगढ़ के संबंध में व्याप्त अनेक भ्रांतियों का निवारण हुआ। शिविर की व्यवस्था में श्री सुकुमारचंदजी, डॉ० जगदीशप्रसादजी, श्री ओमप्रकाशजी तथा श्री हेमचंदजी आदि का विशेष सहयोग रहा।

## अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन प्रगति के पथ पर

**मेरठ ( उ०प्र० ) :-** शिक्षण शिविर के अवसर पर श्री सुकुमारचंदजी की अध्यक्षता में दिनांक १-१-७९ को अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन की शाखा गठित की गई। सर्वसम्मति से कार्यकारिणी का चयन निम्नप्रकार किया गया :- शाखा संरक्षक - श्री सुकुमारचंदजी; अध्यक्ष-डॉ० नवीनचंदजी जैन; उपाध्यक्ष - डॉ० विनोद जैन; मंत्री - श्री कपिलकुमार; उपमंत्री - श्री अर्जुनकुमार; कोषाध्यक्ष - श्री निखिलचंद। ६ अन्य कार्यकारिणी के सदस्य चुने गये। फैडरेशन के ८० सदस्य बनाये गये।

**सरधना ( उ०प्र० ) :-** दिनांक ३०-१२-७८ को यहाँ पर भी अ० भा० जैन युवा फैडरेशन की शाखा गठित की गई। कार्यकारिणी का चुनाव शीघ्र किया जावेगा।

**जतारा ( म०प्र० ) :-** डॉ० अरविंदकुमार जैन के तत्त्वावधान में यहाँ भी फैडरेशन की शाखा गठित की गई। १७ सदस्य बनाये गये।

**उज्जैन ( म०प्र० ) :-** अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन की स्थानीय शाखा के तत्त्वावधान में दिनांक १९-११-७८ को 'सुख आत्मा से होता है, धन से नहीं' विषय पर वाद-विवाद प्रतियोगिता का आयोजन किया गया। दिनांक २६-११-७८ को आध्यात्मिक भजन प्रतियोगिता भी आयोजित की गयी, जिसमें ५० प्रतियोगियों ने भाग लिया। - **सुबोधकुमार सिंघई**

**खैरागढ़ :-** यहाँ अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन की नवीन शाखा गठित की गयी। - **प्रेमचंद जैन**

**पिड़ावा ( राज० ) :-** दिनांक ११-१२-७८ को यहाँ रथयात्रा का आयोजन किया

गया। इस अवसर पर ब्र० पंडित अभिनंदनकुमारजी शास्त्री जयपुर, पंडित विमलकुमारजी झांझरी उज्जैन पधारे। आपके आध्यात्मिक प्रवचनों से उपस्थित जनसमुदाय लाभान्वित हुआ। दिनांक १३-१२-७८ को उत्साही नवयुवकों की एक सभा हुई जिसमें ब्रह्मचारी अभिनंदनकुमारजी की प्रेरणा से अ० भा० जैन युवा फैडरेशन की शाखा गठित की गयी। सर्वसम्मति से कार्यकारिणी का गठन किया गया। **- सुरेन्द्रकुमार जैन, प्रचारमंत्री**

**भोपाल ( म०प्र० ) :-** अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन के तत्त्वावधान में स्थानीय जहाँगीराबाद में वीतराग विज्ञान पाठशाला की स्थापना की गयी। पाठशाला सुचारू रूप से चल रही है। फैडरेशन की ४ उपशाखायें भी प्रारंभ की गई हैं तथा एक शोधसमिति का भी गठन किया गया। **- सुभाष जैन, मंत्री**

## तारण-तरण जयंती समारोह संपन्न

**भोपाल :-** दिनांक ६-१२-७८ को स्थानीय तारण-तरण जैन समाज द्वारा श्रीमद् जिन तारण-तरण का ५३०वाँ जयंती समारोह विशेष उत्साह के साथ मनाया गया। इस अवसर पर मंगलवारा स्थित जैन चैत्यालय में झंडा-वंदन, भजन आदि कार्यक्रमों का तथा सरोजिनी नायडू स्कूल में अंतर्विद्यालयीन भाषण-प्रतियोगिता का आयोजन किया गया। रात्रि को विशाल आमसभा का आयोजन श्री मोहम्मद याकूब राजवानी, खनिज एवं पुनर्वास मंत्री, मध्यप्रदेश की अध्यक्षता में किया गया। सभा में मुख्य अतिथि श्री कैलाश जोशी, विद्युत एवं उद्योग मंत्री, मध्यप्रदेश थे। इस अवसर पर विभिन्न वक्ताओं ने संत तारण-तरण के जीवन पर प्रकाश डाला। **- संयोजक**

**छिंदवाड़ा ( म०प्र० ) :-** आध्यात्मिक संत तारण-तरण का ५३० वाँ जयंती महोत्सव ६ एवं ७ दिसम्बर १९७८ को स्थानीय जिला एवं सत्र न्यायाधीश श्री ए० के० पांडे की अध्यक्षता में विविध कार्यक्रमों के साथ सानंद संपन्न हुआ। पंडित केशरीचंदजी 'धवल' ने संत तारण-तरण के जीवन पर प्रकाश डाला। **- राजेन्द्रकुमार जैन**

**गंजबासौदा ( म०प्र० ) :-** ६ दिसम्बर को आध्यात्मिक संत तारणस्वामी का जन्म-जयंती समारोह सानंद संपन्न हुआ। रात्रि को सभा में अनेक विद्वानों के भाषण हुए। **- स्वतंत्र**

## पंडित ज्ञानचंदजी द्वारा धर्मप्रभावना

**बम्बई :-** दिनांक १५-१२-७८ से १९-१२-७८ तक भूलेश्वर दिगंबर जैन मंदिर के वार्षिक समारोह के अवसर पर पंडित ज्ञानचंदजी पधारे। यहाँ प्रात: समयसार कलश पर तथा रात्रि में छहढाला पर आपके प्रवचन चलते थे। इसके पश्चात् दिनांक २०-१२-७८ से २३-१२-७८ तक श्री सीमंधर जिनालय, जवेरी बाजार में तथा २८-१२-७८ से ३१-१२-७८ तक मलाड़ स्थित जिन मंदिर में आपके तात्त्विक प्रवचनों का आयोजन किया गया। सभी स्थानों पर समाज ने बड़ी संख्या में भाग लेकर अध्यात्म का रसपान किया। इस अवसर पर कुंदकुंद कहान तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट को पूर्व में लिखायी गयी राशि तथा काफी मात्रा में नवीन राशियाँ प्राप्त हुईं।

**- माणिकलाल आर० गाँधी**

**कुम्भोज-बाहुबली :-** दिनांक २४-१२-७८ से २७-१२-७८ तक समाज के विशेष आग्रह पर आप यहाँ भी पधारे। दोनों समय मोक्षमार्गप्रकाशक तथा छहढाला पर प्रवचन तथा दोपहर में तत्त्वचर्चा का आयोजन किया गया। उक्त कार्यक्रम से समाज ने लाभ उठाया।

**- माणिकलाल आर० गाँधी**

**कलकत्ता :-** दिनांक २९-११-७८ से ४-१२-७८ तक पंडित ज्ञानचंदजी विदिशावाले यहाँ पधारे। आपके प्रतिदिन के प्रवचनों से समाज ने लाभ उठाया। रात्रि में दो घंटा साहू अशोककुमारजी की कोठी पर तत्त्वचर्चा होती थी। इस अवसर पर तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट को किश्तों की भारी रकम प्राप्त हुई।

**- वीरचंदभाई**

## तीर्थक्षेत्र कमेटी को पाँच लाख का योगदान

**कलकत्ता :-** यहाँ के प्रसिद्ध उद्योगपति श्री मिश्रीलालजी काला ने तीर्थ सुरक्षा ध्रुव फंड हेतु पाँच लाख रुपया भा० दि० जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी को देने की स्वीकृति प्रदान की है।

**- जयचंद डी० लोहाड़े**

---

**जयपुर :-** ४ दिसम्बर ७८ से १२ दिसम्बर ७८ तक प्रतिदिन रात्रि में टोडरमल स्मारक भवन में समयसार पर पंडित शशिभाई के आध्यात्मिक प्रवचनों का आयोजन किया गया। अंतिम तीन दिन प्रात: मुलतान दिगंबर जैन मंदिर, आदर्शनगर में भी आपके प्रवचन हुए। अंत में छात्रों ने आपको भावभीनी विदाई दी तथा पुन: जयपुर पधारने का अनुरोध किया। दिनांक

२४-१२-७८ को विद्वद्वर्य पंडित बाबूभाई मेहता के भी प्रवचन हुये। आप दोनों यहाँ सत्धर्मप्रेमी श्री हीरालालजी काला भावनगरवालों का रेल दुर्घटना में हाथ कट जाने के प्रसंग में पधारे थे।

**— अभयकुमार जैन**

**अजमेर ( राज० ) :-** ५ दिसम्बर, ७८ से १० दिसम्बर ७८ तक श्री दिगंबर जैन नसियाँ, गोधों का घड़ा, अजमेर में अढ़ाईद्वीप पूजन-विधान सर्वश्री उम्मेदमलजी, नेमीचंदजी, कैलाशचंदजी बड़जात्या की ओर से सानंद संपन्न हुआ। इस अवसर पर श्री टोडरमल दिगंबर जैन सिद्धांत महाविद्यालय, जयपुर के छात्र पंडित कैलाशचंदजी तथा पंडित राजकुमारजी ने दिनांक ८-१२-७८ तक समयसार तथा मोक्षमार्गप्रकाशक पर आध्यात्मिक प्रवचन हुए। दिनांक ९ एवं १०-१२-७८ को पंडित जतीशचंदजी शास्त्री के प्रवचनों का लाभ भी समाज को मिला।

**—सुजानमल जैन**

**दिल्ली :-** डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल मेरठ से लौटते हुए एक दिन के लिये यहाँ रुके। मॉडलबस्ती दिगंबर जैन मंदिर में आपके प्रभावपूर्ण प्रवचन हुए। स्थानीय जैन समाज को धर्मलाभ मिला।

**लखनऊ ( उ०प्र० ) :-** दिनांक २-१२-७८ को स्थानीय चारबाग दिगंबर जैन मंदिर में डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल एवं पंडित शशिभाई भावनगरवालों के सारगर्भित प्रवचनों से स्थानीय समाज ने लाभ उठाया।

**भिण्ड ( म०प्र० ) :-** दिनांक ३-१२-७८ से १४-१२-७८ तक पंडित कैलाशचंदजी बुलंदशहरवाले पधारे। स्थानीय दिगंबर जैन मंदिर परेट पर आपने तीनों समय छहढाला, जैनसिद्धांत-प्रवेशरत्नमाला तथा मोक्षमार्गप्रकाशक के आधार पर कक्षाएँ लीं। आपके द्वारा ली गईं शिक्षण कक्षाओं से साधर्मी भाइयों ने लाभ उठाया। इस अवसर पर ११०० रुपये का साहित्य बिका।

**— इंद्रसेन बजाज**

**ऊन-पावागिरि ( म०प्र० ) :-** दिनांक ५-१२-७८ को पंडित नाथूलालजी प्रतिष्ठाचार्य एवं पंडित फणींद्रभूषणजी द्वारा समवसरण मंडल विधान एवं वेदी प्रतिष्ठा का कार्यक्रम सानंद संपन्न हुआ। इस अवसर पर श्री टोडरमल दिगंबर जैन सिद्धांत महाविद्यालय, जयपुर के छात्र पंडित जतीशचंद्रजी शास्त्री तथा मलकापुर से पंडित अशोककुमारजी भी पधारे थे।

**— जुगमंदरलाल जैन**

**कुचामनसिटी ( राज० ) :-** दिनांक १-३-७९ से ५-३-७९ तक श्री पार्श्वनाथ जिनबिम्ब पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव का आयोजन किया गया है। पधारकर लाभ लेवें।

**-कन्हैयालाल पहाड़िया, अध्यक्ष**

**गुना ( म०प्र० ) :-** जैन समाज गुना के तत्त्वावधान में दिनांक ७-१२-७८ से १६-१२-७८ तक नि:शुल्क नेत्र शिविर का आयोजन किया गया। जिसमें १५०० व्यक्तियों के नेत्र परीक्षण एवं २८६ व्यक्तियों के ऑपरेशन किये गये। **— विनोदकुमार जैन**

---

## वीतराग-विज्ञान पाठशालाओं की निरीक्षण रिपोर्ट

भारतवर्षीय वीतराग-विज्ञान पाठशाला समिति के निरीक्षक श्री पंडित रमेशकुमारजी शास्त्री ने मध्यप्रदेश के भिंड, सागर, खुरई, बीना, मुंगावली, आरोन, राघौगढ़, पिपरई गाँव, गुना आदि नगरों में चल रही पाठशालाओं का निरीक्षण कर प्रसन्नता व्यक्त की। सभी स्थानों पर समाज ने उनके प्रवचनों का लाभ लिया। दिनांक २८-११-७८ से १५-१२-७८ तक मध्यप्रदेश की उक्त पाठशालाओं का निरीक्षण करने के पश्चात् अब वे महाराष्ट्र प्रांत के सोलापुर, कोल्हापुर, पूना, नागपुर, वर्धा जिलों में चल रही पाठशालाओं के निरीक्षण हेतु महाराष्ट्र में भ्रमण कर रहे हैं।

महाराष्ट्र वीतराग-विज्ञान पाठशाला समिति कोल्हापुर शाखा की संचालिका श्रीमती डॉ० विजयलक्ष्मी पांगल ने भी महाराष्ट्र के पुणे, चिखली, अकोला, वर्धा, नागपुर, कारंजा, हिंगोली, जवलाबाजार, शिरड़शहापुर, जिन्तूर, सेलू, परभणी, परलीबैजनाथ तथा मुरूड़ नगरों में चल रही पाठशालाओं का निरीक्षण किया। आपके निरीक्षण से महाराष्ट्र में अच्छी जागृति आयी। पांगल बहिनजी अत्यंत उत्साही, लगनशील और परिश्रमी कार्यकर्ता हैं। इनसे महाराष्ट्र प्रान्त में तत्त्वप्रचार के महत्त्वपूर्ण कार्य में काफी योगदान प्राप्त हो रहा है। **— मंत्री**

## श्री वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड : कार्यक्रम तथा रौल नंबर

दिनांक ५, ६ व ७ फरवरी, १९७९ को होनेवाली परीक्षाओं का विस्तृत कार्यक्रम, परीक्षार्थियों के रोल नंबर तथा अन्य आवश्यक परीक्षोपयोगी सामग्री समस्त संबंधित केन्द्रों को भेजे जा चुके हैं। जिन्हें १५-१-७९ तक प्राप्त न हों वे सज्जन अपने परीक्षार्थियों के नाम लिखकर भेज दें। हम उन पर रोल नंबर लगाकर तुरंत भेज देंगे। प्रश्न-पत्र दिनांक १५-१-७९ के बाद भेजे जायेंगे। **— मंत्री**

# अभिमत

## श्री दिगंबर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ के नवीनतम प्रकाशन एवं डॉ० हुकमचंद भारिल्ल की कृति 'धर्म के दशलक्षण' पर समीक्षक विद्वानों के महत्त्वपूर्ण अभिमत

***पंडित जगन्मोहनलालजी शास्त्री, कटनी ( म०प्र० )**

दशधर्मों पर पंडितजी ( डॉ० भारिल्ल ) के विवेचन मैंने हिंदी आत्मधर्म में भी पढ़े थे। मुझे उनको पढ़कर उसी समय बहुत प्रसन्नता का अनुभव हुआ था। नई पीढ़ी के विद्वानों में डॉ० भारिल्ल अग्रगण्य हैं। इनकी लेखनी को सरस्वती का वरदान है, ऐसा लगता है। डॉ० साहब ने साहित्य के क्षेत्र में इस पुस्तक पर सचमुच डॉक्टरी का प्रयोग किया है। दशधर्मों की औषधि का प्रयोग, दशविकारों की बीमारी का पूरा ऑपरेशन कर, बहुत सुंदरता से किया है। इतना विशद् सांगोपांग वर्णन आधुनिक भाषा व आधुनिक शैली में अन्यत्र दिखायी नहीं देता। पुस्तक आज के युग में नये विद्वानों को दशधर्म का पाठ पढ़ाने को उत्तम है। भाषा प्राजंल है। एक बार शुरु करने पर पुस्तक छोड़ने को जी नहीं चाहता। विषय हृदय को छूता है। कई स्थल ऐसे हैं जिनका अच्छा विश्लेषण किया गया है।

***ब्रह्मचारी पंडित माणिकचंदजी भीसीकर, बाहुबली ( कुंभोज ), संपादक 'सन्मति' ( मराठी )**

....आपके इस ग्रंथ में धर्मो के लक्षणों का आविष्कार करते समय जिस अनौपचारिक, शुद्ध, तत्त्वनिरूपण पद्धति का अवलंब किया गया, वह तलस्पर्शी हुआ है। इस परिश्रमसाध्य निरामय पुरुषार्थ की हार्दिक सराहना है। पुस्तक बहुत ही उपयुक्त एवं प्रेरणादायी प्रतीत हुई है।

***महामहोपाध्याय डॉ० हरीन्द्रभूषणजी जैन, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन**

डॉ० हुकमचंद भारिल्ल नयी पीढ़ी के प्रबुद्ध, लगनशील एवं उच्चकोटि के विद्वान हैं।.....धर्म के दशलक्षण उनकी अपने ढंग की एक सर्वथा नवीन कृति है। डॉ० भारिल्ल ने अपनी इस रचना में अत्यंत सरल भाषा में जैनधर्म के मौलिक दश आदर्शों का प्राचीन ग्रंथों के उद्धरणों के साथ सोदाहरण विवेचन किया है। दशधर्मों का ऐसा शास्त्री निरूपण अभी तक एकत्र अनुपलब्ध था। पर्यूषण पर्व में व्याख्यान करनेवालों को तो यह कृति अत्यंत सहायक होगी।

***पंडित अमृतलालजी जैन, साहित्याचार्य, वाराणसी ( उ०प्र० )**

'धर्म के दशलक्षण' ग्रंथ को मैंने अथ से इति तक शब्दशः ध्यान से पढ़ा, और प्रसन्नता का अनुभव किया। विद्वान लेखक ने प्रतिपाद्य विषय की संपुष्टि के लिये यत्र-तत्र-सर्वत्र आगम के प्रमाण देकर प्रस्तुत ग्रंथ को प्रामाणिक बनाने का भरसक प्रयत्न किया है। बीच-बीच में सुंदर युक्तियों एवं उदाहरणों के देने से प्रस्तुत ग्रंथ और भी आकर्षक हो गया है। बोधगम्य, सरल एवं सरस हिन्दी माध्यम से लिखा गया यह ग्रंथ

साधारण पाठक को भी आसानी से समझ में आ जायेगा। ऐसे ग्रंथ के प्रणमन के लिये प्रणेता डॉ० भारिल्ल, जो प्रखरवक्ता, सिद्धहस्तलेखक एवं कुशल अध्यापक हैं; धन्यवाद एवं बधाई के पात्र हैं, और प्रकाशन संस्था भी।

*** श्री उदयचंद्रजी जैन, प्राध्यापक, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी ( उ०प्र० )**

.....पुस्तक का बाह्य रूप जितना आकर्षक है, उसका आभ्यंतर रूप भी उससे अधिक आकर्षक है। इसमें संदेह नहीं कि पुस्तक अत्यंत उपयोगी और सारगर्भित है। इसमें धर्म के उत्तमक्षमादि दशलक्षणों का मार्मिक, तात्त्विक और व्यावहारिक विवेचन किया गया है। भाव, भाषा, शैली आदि सभी दृष्टियों से पुस्तक उपादेय तथा पठनीय है। धर्म का वास्तविक स्वरूप समझने के लिये प्रत्येक श्रावक को इसका अध्ययन, मनन और चिंतन अवश्य करना चाहिये। डॉ० भारिल्ल उच्चकोटि के लेखक और वक्ता है।

*** प्रो० प्रवीणचंद्रजी जैन, निदेशक, उच्चस्तरीय अध्ययन अनुसंधान केंद्र, जयपुर**

डॉ० हुकमचंद भारिल्ल एक प्रबुद्ध आत्माभिमुख व्यक्तित्व हैं। उनकी वाणी में ओज और शब्दों में ऋजुता है। उनकी लेखनी से प्रसूत 'धर्म के दशलक्षण' नामक कृति इस ओर प्रवृत्त मानवों को तो अज्ञानमूलक रूढ़ियों से हटाकर आत्मविभोर करेगी ही, साधारणजन भी जिन्हें बहिर्मुख कहा या समझा जाता है यदि इसे एक बार आद्योपांत पढ़ जाएँ तो निश्चय ही उनकी बहिर्मुखता अंतर्मुखता की ओर गतिशील हो सकेगी। डॉ० भारिल्ल को इस बहुमूल्य रचना के लिये धन्यवाद अर्पित करते हुए मैं चाहता हूँ कि यह कृति जन-जन के हाथों में पहुँचे और इसके अध्ययन से उनका जीवन सार्थक हो। जब ये लेख 'आत्मधर्म' में प्रकाशित हो रहे थे तो मेरे मन में आता था कि ये लेख पुस्तकाकार में प्रकाशित हो जाएँ। मनचीता हो गया।

*** इतिहासरत्न, विद्यावारिधि डॉ० कस्तूरचंदजी कासलीवाल, जयपुर ( राज० )**

.....दशधर्मों पर डॉ० भारिल्ल सा० के लेखों को पुस्तकरूप में प्रकाशित करके बहुत अच्छा काम किया है। विद्वान मनीषी ने अपनी सुबोध शैली में दशधर्मों पर सारगर्भित एवं मौलिक विचार प्रस्तुत किये हैं, जिनको पढ़कर प्रत्येक पाठक इन धर्मों के वास्तविक रहस्य को सरलता से जान सकता है तथा उन पर चिंतन एवं मनन कर सकता है। पुस्तक की छपाई एवं गेट-अप दोनों ही नयनाभिराम हैं।

*** डॉ० ज्योतिप्रसादजी जैन, लखनऊ ( उ०प्र० )**

डॉ० हुकमचंद भारिल्ल आध्यात्मिक शैली के प्रतिष्ठित सुचिन्तक, सुवक्ता, सुलेखक हैं। प्रस्तुत पुस्तक में उन्होंने प्रसादगुण-संपन्न शैली में धर्म के उत्तमक्षमादि दश पारंपरिक लक्षणों अथवा आत्मिक गुणों का युक्तियुक्त विवेचन किया है, जो सैद्धांतिक से अधिक मनोवैज्ञानिक हैं, और साधक को विभिन्न भूमिकाओं के परिप्रेक्ष्य में अंतर एवं बाह्य, निश्चय एवं व्यवहार, विविध दृष्टियों के समावेश के कारण विचारोत्तेजक है; अतः पठनीय एवं मननीय है।

# प्रबंध संपादक की कलम से

**कृपया निम्नलिखित सूचनाओं पर अवश्य ध्यान दें: —**

(१) जिन बंधुओं का सदस्यता शुल्क जनवरी माह में समाप्त हो रहा है, उन्हें गत माह के आत्मधर्म के साथ मनिआर्डर फार्म भेजे गये थे। कृपया संबंधित बंधु शीघ्र ही मनिआर्डर फार्म भरकर भेजें अन्यथा उन्हें फरवरी का अंक भेजने में असमर्थ रहेंगे।

(२) आत्मधर्म के ग्राहकों को भेंट में दी जानेवाली पुस्तक मई-जून तक भेजी जा सकेगी। तदर्थ पत्र-व्यवहार करने का कष्ट न करें।

## पंडित नरेन्द्रकुमारजी भीसीकर एवं पंडित शशिभाई के कार्यक्रम

**जयपुर :** श्री टोडरमल दिगंबर जैन सिद्धांत महाविद्यालय के कार्यक्रमों के अंतर्गत दिनांक १५ जनवरी से २९ जनवरी, १९७९ तक पंडित नरेन्द्रकुमारजी भीसीकर शास्त्री, न्यायतीर्थ एवं दिनांक १५ फरवरी से २५ फरवरी, १९७९ तक अध्यात्मप्रवक्ता पंडित शशिभाई भावनगरवाले पधार रहे हैं। दोनों विद्वानों के आध्यात्मिक प्रवचनों के साथ भीसीकरजी न्याय और सिद्धांतग्रंथों की कक्षाऐं भी लेंगे। डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल भी उन दिनों यहीं रहेंगे। उनके समागम का भी लाभ प्राप्त होगा।

बाहर से पधारनेवाले महानुभावों के लिये नि:शुल्क आवास एवं सशुल्क भोजन की व्यवस्था है। पधारनेवाले महानुभाव तत्काल सूचित करें जिससे उनके ठहरने आदि की समुचित व्यवस्था की जा सके। **- मंत्री, पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट**

# परिषद् का शीतल शताब्दी अधिवेशन सानंद संपन्न

**भिण्ड :-** दिनांक १९ एवं २० नवम्बर, १९७८ को दिगंबर जैन परिषद् का शीतल जन्म शताब्दी अधिवेशन अनेक कार्यक्रमों के साथ श्री सेठ डालचंदजी सागरवालों की अध्यक्षता में सानंद संपन्न हुआ। अधिवेशन में स्थानीय समाज के अतिरिक्त अनेक मंत्रीगण, श्रेष्ठीगण व विद्वत्गणों सहित सारे भारतवर्ष के लगभग ३०० प्रतिनिधियों ने भाग लिया। इस अवसर पर युवा सम्मेलन, महिला सम्मेलन, पत्रकार सम्मेलन आदि के साथ-साथ अनेक महत्त्वपूर्ण निर्णय व प्रस्ताव पास किये गये। जिनवाणी के अपमान के विरुद्ध परिषद ने अपना सर्वसम्मत मत अत्यंत स्पष्ट भाषा में एक प्रस्ताव के रूप में इस प्रकार व्यक्त किया :—

**''परिषद् ने प्रारंभ से ही जैन साहित्य की सुरक्षा, संरक्षण एवं प्रचार-प्रसार में अपनी शक्ति लगायी है। वर्तमान में दिगंबर जैन समाज के कतिपय तत्त्वों ने स्थान विशेष से प्रकाशित जैन साहित्य का अपमान एवं जलप्रवाह सगर्व किया है; साथ ही ऐसे साहित्य को जैन मंदिरों से हटाने एवं भविष्य में उन्हें वहाँ न रखने हेतु बोर्ड लगा रहे हैं। इस प्रवृत्ति से समाज में अशांति तो उत्पन्न हो ही रही है; साथ ही जिनवाणी के अपमान एवं बहिष्कार की गलत परंपरा भी पड़ रही है। परिषद् इस प्रस्ताव द्वारा ऐसे असहिष्णु कृत्यों की भर्त्सना करती है और उनकी रोकथाम के लिये समाज से सचेष्ट रहने का अनुरोध करती है।''**

**प्रस्तावक :- डॉ० राजेन्द्र बंसल, शहडोल**

**समर्थक :- श्री अभयकुमार टडैया, ललितपुर**

Registration. No. RJ-2712

# हमारे यहाँ प्राप्त प्रकाशन *

| | |
|---|---|
| मोक्षशास्त्र | १२-०० |
| समयसार | १२-०० |
| समयसार पद्यानुवाद | ०-७० |
| समयसार कलश टीका | ६-०० |
| प्रवचनसार | १२-०० |
| पंचास्तिकाय | ७-५० |
| नियमसार | ५-५० |
| नियमसार पद्यानुवाद | ०-४० |
| अष्टपाहुड़ | १०-०० |
| समयसार नाटक | ७-५० |
| समयसार प्रवचन भाग १ | ६-०० |
| समयसार प्रवचन भाग २ | प्रेस में |
| समयसार प्रवचन भाग ३ | ५-०० |
| समयसार प्रवचन भाग ४ | ७-०० |
| आत्मावलोकन | ३-०० |
| श्रावकधर्म प्रकाश | ३-५० |
| द्रव्यसंग्रह | १-५० |
| लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका | ०-४० |
| प्रवचन परमागम | २-५० |
| धर्म की क्रिया | २-०० |
| जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग १ | १-५० |
| जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग २ | १-५० |
| जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग ३ | १-५० |
| तत्त्वज्ञान तरंगिणी | ५-०० |
| अलिंग-ग्रहण प्रवचन | १-६० |
| वीतराग-विज्ञान भाग ३ (छहढाला पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन) | १-०० |
| बालपोथी भाग १ | ०-६० |
| बालपोथी भाग २ | प्रेस में |
| ज्ञानस्वभाव ज्ञेयस्वभाव | ४-०० |
| बालबोध पाठमाला भाग १ | ०-५० |
| बालबोध पाठमाला भाग २ | ०-७० |
| बालबोध पाठमाला भाग ३ | ०-७० |
| वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग १ | ०-७० |
| वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग २ | १-०० |
| वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग ३ | १-०० |
| तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग १ | १-२५ |
| तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग २ | १-२५ |
| जयपुर (खानियाँ) तत्त्वचर्चा भाग १ व २ | ३०-०० |
| मोक्षमार्गप्रकाशक | प्रेस में |

| | | |
|---|---|---|
| पंडित टोडरमल : व्यक्तित्व और कर्तृत्व | | १०-०० |
| तीर्थंकर महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ | | ५-०० |
| " " (पॉकेट बुक साइज में हिन्दी में) | | २-०० |
| मैं कौन हूँ ? | | १-०० |
| तीर्थंकर भगवान महावीर | | ०-४० |
| वीतरागी व्यक्तित्व : भगवान महावीर | | ०-२५ |
| अपने को पहचानिए | | ०-५० |
| अर्चना (पूजा संग्रह) | | ०-४० |
| मैं ज्ञानानंद स्वभावी हूँ (कैलेंडर) | | ०-५० |
| पंडित टोडरमल : जीवन और साहित्य | | ०-६५ |
| कविवर बनारसीदास : जीवन और साहित्य | | ०-३० |
| सत्तास्वरूप | | १-७० |
| सुंदरलेख बालबोध पाठमाला भाग १ | | प्रेस में |
| अनेकांत और स्याद्वाद | | ०-३५ |
| युगपुरुष श्री कानजीस्वामी | | १-०० |
| वीतराग-विज्ञान प्रशिक्षण निर्देशिका | | ३-०० |
| सत्य की खोज (भाग १) | | २-०० |
| आचार्य अमृतचंद्र और उनका पुरुषार्थसिद्धयुपाय | साधारण : | २-०० |
| | सजिल्द : | ३-०० |
| धर्म के दशलक्षण | साधारण : | ४-०० |
| | सजिल्द : | ५-०० |

Licence No.
P. P. 16-S.S.P. Jaipur City Dn.
Licensed to Post
Without Pre-Payment

*If undelivered please return to :*
**प्रबन्ध-संपादक, आत्मधर्म**
ए-४, टोडरमल स्मारक भवन, बापूनगर
जयपुर ३०२००४